सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

ब्याज अधिनियम, 1839

पर

त्रेसठवीं रिपोर्ट

फरवरी, 1975

भारत सरकार
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय
विधि कार्य विभाग

पी० बी० गजेन्द्रगड़कर

अ० स० सं० एफ० 2(5)/74-एल० सी०
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001,
21 फरवरी, 1975

प्रिय मंत्री महोदय,

मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि मैं इस पत्र के साथ आपको ब्याज अधिनियम, 1839 (1839 का अधिनियम संख्यांक 32 जो 30 दिसम्बर, 1839 को पारित हुआ था) पर विधि आयोग की त्रेसठवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

यह अधिनियम बहुत छोटा है। प्रस्तावना के अतिरिक्त इसमें केवल एक धारा और एक परन्तुक है किन्तु यह एक महत्वपूर्ण कानून है क्योंकि इसमें ब्याज की वह साधारण विधि विहित है जो विशेष रूप से इस विषय से संबंधित संविदाजन्य या कानूनी उपबंधों के न होने की दशा में लागू होती है।

इस अधिनियम में प्रयुक्त लगभग प्रत्येक वाक्यांश से निर्वचन की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं और न्यायिक निर्णयों में उनके बारे में जो मत व्यक्त हुए हैं वे एक दूसरे से भिन्न हैं।

इसके अतिरिक्त, यह बहुत पुराना अधिनियम है और आयोग का यह विचार था कि विषयवस्तु और प्ररूप दोनों की दृष्टि से इस पर फिर से विचार किया जाना आवश्यक है। यही कारण है कि आयोग ने इस अधिनियम के पुनरीक्षण का कार्य अपनी इच्छा से प्रारम्भ किया।

आयोग की रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमने जो विभिन्न सिफारिशें की ह उनका आशय इस अधिनियम का पूरी तौर से पुनरीक्षण करना और उसके उपबंधों को व्यापक बनाना है। आशा है कि ये सिफारिशें इस अधिनियम के उपबंधों को अधिक सुनिश्चित, विनिर्दिष्ट, असंदिग्ध और न्यायशास्त्र की दृष्टि से संतोषप्रद बनाएंगी।

आयोग का मत है कि साधारण महत्व का अधिनियम स्वयंपूर्ण कानून होना चाहिए। उसमें सुसंगत उपबंध सरलता से समझ में आने योग्य प्ररूप में एक ही स्थान पर होने चाहिए। अभी साधारण नागरिक को इन्हें अनेक न्यायिक निर्णयों से इकठ्ठा करना होता है। संक्षेप में यही वह दृष्टिकोण है जो आयोग ने अपनी रिपोर्ट के संबंध में अपनाया है।

जैसा प्रायः होता रहा है, विषय का प्रारम्भिक अध्ययन करने के पश्चात् श्री पी० एम० बख्शी, सदस्य-सचिव ने रिपोर्ट का एक प्रारूप तैयार किया। उस प्रारूप पर ध्यानपूर्वक विचार किया गया, उसका पुनरीक्षण किया गया और आयोग के निष्कर्षों के अनुसार उसे अंतिम रूप दिया गया। इस प्रकार से यह रिपोर्ट तैयार हुई है।

पी० बी० गजेन्द्रगड़कर

अ० स० सं० एफ० 2(5)/74-एल० सी०
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001,
21 फरवरी, 1975

प्रिय मंत्री महोदय,

मुझे इस बात की बहुत खुशी है कि मैं इस पत्र के साथ आपको ब्याज अधिनियम, 1839 (1839 का अधिनियम संख्यांक 32 जो 30 दिसम्बर, 1839 को पारित हुआ था) पर विधि आयोग की तिरसठवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

यह अधिनियम बहुत छोटा है। प्रस्तावना के अतिरिक्त इसमें केवल एक धारा और एक परन्तुक है किन्तु यह एक महत्वपूर्ण कानून है क्योंकि इसमें ब्याज की वह साधारण विधि विहित है जो विशेष रूप से इस विषय से संबंधित संविदाजन्य या कानूनी उपबंधों के न होने की दशा में लागू होती है।

इस अधिनियम में प्रयुक्त लगभग प्रत्येक वाक्यांश से निर्वचन की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं और न्यायिक निर्णयों में उनके बारे में जो मत व्यक्त हुए हैं वे एक दूसरे से भिन्न हैं।

इसके अतिरिक्त, यह बहुत पुराना अधिनियम है और आयोग का यह विचार था कि विषयवस्तु और प्ररूप दोनों की दृष्टि से इस पर फिर से विचार किया जाना आवश्यक है। यही कारण है कि आयोग ने इस अधिनियम के पुनरीक्षण का कार्य अपनी इच्छा से प्रारम्भ किया।

आयोग की रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमने जो विभिन्न सिफारिशें की ह उनका आशय इस अधिनियम का पूरी तौर से पुनरीक्षण करना और उसके उपबंधों को व्यापक बनाना है। आशा है कि ये सिफारिशें इस अधिनियम के उपबंधों को अधिक सुनिश्चित, विनिर्दिष्ट, असंदिग्ध और न्यायशास्त्र की दृष्टि से संतोषप्रद बनाएंगी।

आयोग का मत है कि साधारण महत्व का अधिनियम स्वयंपूर्ण कानून होना चाहिए। उसमें सुसंगत उपबंध सरलता से समझ में आने योग्य प्ररूप में एक ही स्थान पर होने चाहिए। अभी साधारण नागरिक को इन्हें अनेक न्यायिक निर्णयों से इकठ्ठा करना होता है। संक्षेप में यही वह दृष्टिकोण है जो आयोग ने अपनी रिपोर्ट के संबंध में अपनाया है।

जैसा प्रायः होता रहा है, विषय का प्रारम्भिक अध्ययन करने के पश्चात् श्री पी० एम० बख्शी, सदस्य-सचिव ने रिपोर्ट का एक प्रारूप तैयार किया। उस प्रारूप पर ध्यानपूर्वक विचार किया गया, उसका पुनरीक्षण किया गया और आयोग के निष्कर्षों के अनुसार उसे अंतिम रूप दिया गया। इस प्रकार से यह रिपोर्ट तैयार हुई है।

प्रसंगवश मैं यह बता दूं कि 1 अक्तूबर, 1974 को आयोग के पुनर्गठन के बाद से यह वर्तमान आयोग की द्वितीय रिपोर्ट है ।

सादर,

भवदीय,

ह० (पी० बी० गजेन्द्रगड़कर)

माननीय श्री ह० रा० गोखले,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय,
भारत सरकार, नई दिल्ली ।

संलग्न: यथोक्त ।

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1. इस रिपोर्ट का विषय ब्याज अधिनियम, 1839 है (जिसे इसमें आगे अधिनियम कहा गया है)। उस अधिनियम के पुनरीक्षण का कार्य विधि आयोग ने सामान्य रूप से लागू होने वाले और सामान्य महत्व के केन्द्रीय अधिनियमों का पुनरीक्षण करने के अपने कृत्य के एक अंग के रूप में स्वेच्छा से किया है। यह अधिनियम छोटा किन्तु महत्वपूर्ण कानून है और इसमें कुछ कठिनाइयां भी हैं। इस रिपोर्ट के अगले अध्यायों में जो विवेचन किया गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाएगी। रिपोर्ट का आधार।

1.2. इस अधिनियम में ब्याज से संबंधित सभी विधियों का समावेश नहीं है। उदाहरण के लिए सन् 1855 में सूदखोरी के विरुद्ध कानूनों को एक केन्द्रीय अधिनियम द्वारा निरसित कर दिया गया था[1]। सन् 1918 में एक अन्य केन्द्रीय अधिनियम[2] द्वारा कुछ अति ब्याज वाले संव्यवहारों का विनियमन किया गया। अन्य विधियों में उन संव्यवहारों के बारे में, जिनके विषय में वे विधियां हैं, ब्याज प्रभारित करने से सुसंगत उपबंध हैं। बाद की तारीख से ब्याज के प्रश्न को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 लागू होती है। उस संहिता के विषय में हम एक पृथक रिपोर्ट[3] दे चुके हैं जिसमें उस धारा के संबंध में भी चर्चा है। अन्य विधियां।

1.2क. इंगलैण्ड की विधि का नियम[4] यह है कि जब तक लिखत को देखने से ही यह बात प्रतीत नहीं होती है कि ब्याज देने का इरादा था या वाणिज्यिक लिखत की दशा में "जब तक व्यापार प्रथा से ऐसा विवक्षित न हो तब तक लिखित रूप में लिखत से" प्रतिभूत धन पर भी ब्याज देय नहीं है। इंगलैंड की विधि का नियम।

कामन ला में करार द्वारा या व्यापारिक प्रथा द्वारा छोड़कर साधारण ऋणों पर ब्याज देय नहीं था और न ऐसे ऋण का भुगतान न करने के लिए नुकसानी अधिरोपित की जा सकती थी।[5]

1.3. यह ध्यान देने की बात है कि 1839 में अधिनियमित भारतीय अधिनियम सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 के बाद पारित हुआ था। सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 इंगलण्ड में अधिनियमित हुआ था और एक बड़ी सीमा तक उससे ब्याज के दिए जाने के विरुद्ध प्रतिषेध को शिथिल किया गया था जो कि इंगलैण्ड में कामन ला में आम धारणा रही है। जब 1854 में इंगलैण्ड में सूदखोरी से संबंधित विधियों को भी 19वीं शताब्दी में भारतीय और इंगलैण्ड के विधान।

1. सूदखोरी विधियां निरसन अधिनियम, 1855।
2. अतिब्याज उधार अधिनियम, 1918।
3. विधि आयोग की पचपनवीं रिपोर्ट (सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34)।
4. पेज **बनाम** न्यूमैन (1829) 9 बी० एण्ड सी० 378, 381; आर० आर० 204, 206 तथा लार्ड हर्शेल द्वारा पुनर्विलोकित इंगलैंड के प्रामाणिक निर्णय एल० सी० एण्ड डी० आर० कम्पनी **बनाम** एस० ई० आर० कम्पनी (1893) ए० सी० 429, 437।
5. एल० सी० एण्ड डी० आर० कम्पनी **बनाम** एस० ई० आर० कम्पनी (1829) चांसरी 120, 140 (लिण्डले एल० जे०) अपील किए जाने पर अनुमोदित एल० सी० एण्ड डी० आर० कम्पनी **बनाम** एस० ई० आर० कम्पनी (1893) ए० सी० 429 (एच० एल०)।

विधिवत् निरसित कर दिया गया तब भारतीय विधान मण्डल ने भी उसका अनुकरण किया और 1855 में सूदखोरी विधियों का निरसन[1] किया। व्यावहारिक रूप से सूदखोरी के विरुद्ध प्रतिषेध को इंगलण्ड के न्यायालयों में 1854 के अधिनियम[2] द्वारा विधिवत् निरसन के पूर्व भी लागू नहीं किया जाता था।

संकीर्ण सीमाएं।

1.4. इस रिपोर्ट में आगे चलकर धारा 1 के संबंध में जो विस्तृत चर्चा[3] की गई है उससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि अधिनियम ब्याज के अधिकार को संकीर्ण सीमाओं के भीतर रखता है। इस दृष्टिकोण का एक कारण ऐतिहासिक है[4]। यह भी सोचा जा सकता है कि ब्याज का दावा करने का अधिकार संकीर्ण सीमाओं के भीतर इसलिए रखा गया था कि लेनदारों को इस बात के लिए उत्प्रेरित किया जाए कि वे वाद फ़ाइल करने के लिए तत्परता से कार्यवाही करें। यह बात तो सभी को मालूम है कि जब एक बार वाद संस्थित कर दिया जाता है[5] तब ब्याज देने का न्यायालय का विवेक उस विवेक से अधिक व्यापक होता है जो ब्याज अधिनियम द्वारा प्रदत्त है।

अध्याय 2

ब्याज और सूदखोरी का इतिहास

ब्याज की धारणा।

2.1. इस विषय पर विधि की चर्चा करने से पूर्व ब्याज की धारणा और सूदखोरी से उसके संबंध के बारे में कुछ आम बातें बताना वांछनीय होगा।

ब्याज किसी उधार या अन्य धन संबंधी बाध्यता का प्रतिलाभ है। उधार देने वाले के लिए ब्याज वर्तमान धन और भावी धन के बीच का अन्तर है जो लाभ के रूप में जाना जाता है।

आम शब्दों में ब्याज[6] एक व्यक्ति द्वारा किसी धन-राशि के जो किसी अन्य व्यक्ति की है या उसे देय है, उपयोग या अपने पास रखने के लिए प्रतिलाभ या प्रतिफल या प्रतिकर है। ब्याज के अन्य आवश्यक लक्षण भी हो सकते हैं किन्तु वे हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए तात्विक नहीं हैं।

वर्तमान धन और भावी धन के बीच लोगों के अलग-अलग अधिमान होते हैं। अतः उधार पर "प्राकृतिक" ब्याज की दर का प्रश्न उठता है। साधारणतः उधार देने वाला अपनी भावी आवश्यकता की तुलना में उधार लेने वाले की वर्तमान आवश्यकता का लाभ उठाएगा और उचित से अधिक दर प्रभारित करेगा और यह बात वह वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों का ध्यान रखे बिना करेगा[7]।

---

1. सूदखोरी विधियां निरसन अधिनियम, 1855।
2. देखिए स्टीफ़ेन द्वारा लिखित हिस्ट्री आफ़ इंगलिश क्रिमिनल लाज, जिल्द 3, पृष्ठ 198।
3. देखिए आगामी अध्याय 3।
4. देखिए सूदखोरी के विषय में चर्चा, आगामी अध्याय 2
5. धारा 34 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908।
6. वैलिडिटि आफ़ फ़ार्म सिक्योरिटी ऐक्ट के संबंध में निर्देश, एस० सी० आर० 394, 411 (कनाडा)।
7. देखिए डा० फ्रांसिस हाइड, अर्थशास्त्र के चेडाक प्रो०, लीवर पूल विश्वविद्यालय, द्वारा चैम्बर एनसाइक्लोपीडिया (1959) जिल्द 14 में पृष्ठ 213 पर यूज़ुरी विषय पर लिखित लेख।

2.2. यह आवश्यक नहीं है कि ब्याज की बाजार दर वही हो जो किसी उधार देने वाले व्यक्ति और उधार लेने वाले व्यक्ति के बीच तय पाई गई है। एक लेखक[1] ने इस विषय पर लिखा है :— बाजार दर और तय पाई हुई दर।

"जैसा कि अर्थशास्त्री अब सामान्य रूप से सहमत हैं ब्याज की बाजार दर समय अधिमान[2], विनिधान के अवसर, और तरलता के लिए अधिमान[3] की दशाओं द्वारा तय होती है। यह दर उधार दी जाने योग्य निधियों की कीमत का क्रेता और विक्रेता द्वारा सामान्य अनुमान अथवा विभिन्न समयों पर उपलब्ध निधियों के वर्तमान विनिमय अनुपातों को अभिव्यक्त करती है————।"

यह लिखने के बाद कि बाजार दर प्रतिस्पर्धा की स्थितियों से तय होती है, लेखक कहता है कि :—

"ऊपर जिन प्रतिस्पर्धा की स्थितियों की कल्पना की गई है वे विशिष्ट रूप से धन और पूंजी बाजारों को लागू होती हैं। उपभोग के लिए उधारों के संबंध में यह कल्पना सम्भवतः कम यथार्थवादी होगी। यहां पर आधुनिक अर्थों में सूदखोरी का खतरा अधिक है। फिर भी इस उधार के संदाय के अन्तर्गत शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त संचालन खर्चों को और असंदाय की जोखिमों को उठाने के लिए प्रभार भी हैं। छोटी धन-राशि के उधार के क्षेत्र में अतिब्याज वाली दरों से उधार लेने वाले को कुछ संरक्षण यूनाइटेड स्टेट्स में संघीय और राज्य विधान द्वारा और अन्य देशों में इसी प्रकार की विधियों द्वारा दिए गए हैं।"

2.3. आर्थिक सिद्धांत के अन्तर्गत ब्याज के औचित्य अनेक हैं। एक लेखक ने स्थिति का विश्लेषण इस प्रकार किया है[4]। "ब्याज का प्रथम प्ररूपिक और सैद्धांतिक औचित्य यह है कि धन के उपयोग से आय हो सकती है। ब्याज के सिद्धांत के बारे में इस दृष्टिकोण का विकास कि धन से आय होती है, वास्तव में एडम स्मिथ (1723-1790) ने किया। अनेक परिवर्तनों के बावजूद मूल प्रतिपाद्य विषय यह है कि धन तब तक उधार लिया जाता रहेगा और उस पर ब्याज लिया जाता रहेगा जब तक उधार लिए गए धन पर अर्जित हो सकने वाला प्रतिलाभ ब्याज की दर से अधिक रहता है। अतः ब्याज इसलिए दिया जाता है कि धन के उपयोग से आय प्राप्त हो सकती है"। ब्याज प्रभारित करने का औचित्य-धन से आय होती है।

2.4. उसी लेखक ने[4] ब्याज के एक अन्य आर्थिक औचित्य, "समय अधिमान" के सिद्धांत की व्याख्या इस प्रकार की है :—

"यूजेन वोह्म बीवर्क ने सर्वप्रथम 1880 वाले दशक में ब्याज दर सिद्धांत के प्रदाय पक्ष का विधिवत् विश्लेषण किया था। उसका सिद्धांत, समय अधिमान या प्रविरति का सिद्धांत था। उस सिद्धांत के अनुसार, वर्तमान काल में जो धन-राशि हाथ में है उसका मूल्य भविष्य में किसी समय देय उसी धन-राशि के मूल्य से अधिक होता है। उधार देने वाले का इस बात को अधिमान देना

1. टामस एफ० डिवाइन, अर्थशास्त्र के प्रो० सेंटलुई विश्वविद्यालय द्वारा एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना की जिल्द 27 में पृष्ठ 825 पर "यूजुरी" विषय पर लिखित लेख।

2. देखिए आगामी पैरा 2.4।

3. देखिए आगामी पैरा 2.5।

4. विलियम किनार्ड जूनियर (कानेक्टीकट विश्वविद्यालय) का एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना जिल्द 15 में पृष्ठ 191 पर "इन्टरेस्ट" पर लेख।

कि वह भविष्य में वायदा किए गए धन के मुकाबले में धन का उपयोग अभी करेगा, उसे कुछ प्रीमियम (लाभ) मांगने के लिए प्रेरित करता है।"

उपर्युक्त दृष्टिकोणों में परिवर्तन।

2.5. आधुनिक आर्थिक विश्लेषण से इन मूलभूत दृष्टिकोणों में परिवर्तन हुए हैं[1]। उदाहरण के लिए जोन मैनार्ड कीन्ज (1883–1946) का तर्क यह है कि ब्याज का प्रश्न धन के उपयोग से नहीं बल्कि सीधे धन की पूर्ति और मांग से उठता है। उनका मत है कि धन का एक अनोखा लक्षण "तरलता" है और धन की मांग करना "तरलता अधिमान" का समर्थन करना है।

"धन की तरलता" की धारणा का विकास एक अंग्रेज अर्थशास्त्री ने किया था[2] :—

"अधिक परिष्कृत सिद्धांत का विकास करने के लिए धन के स्वामियों को धन से भिन्न आस्तियां धारण करने के लिए उत्प्रेरित करने के वास्ते अपेक्षित पुरस्कार द्वारा मापे गए तरलता अधिमान के प्रस्ताव का अनेक पक्षों में विभाजन करना होगा। धन की तुलना में विभिन्न प्रकार की आस्तिओं के अलाभों में हम निम्नलिखित प्रभेद कर सकते हैं, अर्थात् :—

1. **तरलता का संकीर्ण अर्थ**—तरलता का एक अंग किसी आस्ति की धन के रूप में वसूल किए जाने की सामर्थ्य है। सीमित और अपूर्ण बाजार, विक्रय का खर्च और उसमें होने वाली परेशानी तथा उसके लिए अपेक्षित समय किसी आस्ति के मूल्य में परिवर्तता से सर्वथा भिन्न उसकी तरलता को कम करते हैं। संकीर्ण अर्थों में तरलता उसके मूल्य को नकदी में वसूल करने की शक्ति पर निर्भर करती है, चाहे अभी इसका मूल्य कुछ भी हो। कीन्ज के शब्दों से होने वाले भ्रम को बचाने के लिए हम इस क्वालिटी को "तरलता" की बजाय "सुविधा" कहेंगे।

2. **भावी पूंजी मूल्य की अनिश्चितता अथवा संक्षेप में पूंजी अनिश्चितता**—यह उधार लेने वाले की असफलता के भय के कारण नहीं बल्कि ब्याज की प्रचलित दर में परिवर्तनों के कारण पंजी मूल्यों में परिवर्तन की सम्भावना के कारण होती है। (तरलता अधिमान के विषय में कीन्ज की मुख्य धारणा का अर्थ यही है। **वे मानते हैं कि यदि कोई आस्ति उसके मोचन की तारीख से पूर्व वसूल की जानी है तो ब्याज की दर मुख्य रूप से पूंजी की हानि की सम्भावना के विरुद्ध प्रीमियम है)।**

3. **उधार देने वाले की जोखिम**—यह उधार लेने वाले की आंशिक या पूरी असफलता का भय है। इसके अतिरिक्त, दीर्घकालीन बंधपत्रों की अन्य कागजी आस्तियों से तुलना करते समय हमें एक बात और जोड़नी होगी।

4. **आय के बारे में** यह **अनिश्चितता** की आस्ति में इस समय लगा हुआ धन भविष्य में आय प्रदान करेगा अथवा (संक्षेप में) **आय अनिश्चितता**।"

ब्याज लेने का आर्थिक औचित्य लम्बे संविवाद के बाद ही स्वीकार किया गया।

2.6. इस प्रसंग में सूदखोरी और सूदखोरी संबंधी विधियों के बारे में जो लम्बा संविवाद रहा है वह ऐतिहासिक और आर्थिक रुचि का है। सूदखोरी संबंधी विधियों का मुख्य उद्देश्य यह है कि प्रचलित परिस्थितियों की तुलना में उधार लेने वाले की आवश्यकता का उधार देने वाले द्वारा शोषण रोका जाए।[3]

---

1. विलियम केनार्ड जूनियर (कानेक्टीकट विश्वविद्यालय) का एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना जिल्द 15 में पृष्ठ 191 "इन्टरेस्ट" पर लेख।

2. जान रेबिनसन, दि रेट आफ इन्टरेस्ट एण्ड अदर एसेज (मेकमिलन लदन 1952) पृष्ठ 6।

3. पूर्वगामी पैरा 2.2 देखिए।

"धन के उधार के लिए या किसी ऋण की परिपक्वता के समय को बढ़ाए जाने के लिए **विधि द्वारा अनुज्ञात मात्रा से अधिक ब्याज** प्रभारित करना "सूदखोरी" है। इंगलैण्ड की प्राचीन विधियों में सूदखोरी का अर्थ धन के (चाहे रकम कुछ भी हो) उपयोग के लिए प्रतिकर था। परन्तु ऊपर जो कुछ कहा गया है वही सूदखोरी का अर्थ आज कल भी है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका[1] में लिखा है कि :—

> "सूदखोरी के विरुद्ध विधियों का प्रारम्भ प्राचीन काल में हुआ था। चीन और भारत की प्राचीन विधियों से सूदखोरी प्रतिषिद्ध थी। मूसा नियम में ब्याज लेने की सीमा निर्धारित थी । रोमन विधि ऐसे प्रभारों को विहित या विनियमित करती थी। इंगलैण्ड में मध्यकाल के दौरान ब्याज प्रभारित करने की प्रथा की निन्दा चर्च ने की थी और राज्य ने उसे विधिविरुद्ध घोषित किया था। किन्तु आधुनिक वाणिज्य में उधार की आवश्यकताओं के कारण इंगलैंड में और अन्यत्र भी यह प्रतिबंध हटा लेने पड़े।
>
> इंगलैण्ड के कामन ला के अधीन या युनाइटेड स्टेट्स में अत्यधिक ब्याज का वसूल किया जाना अवैध कार्य नहीं है। फिर भी उन दोनों ही देशों के कानूनों द्वारा एक ऐसी लोकनीति क्रियान्वित की गई है जो धोखेबाज साहूकारों से ऋणी की रक्षा करती है। इंगलैण्ड में 1900 और 1927 के मनीलेण्डर्स ऐक्टों से एक ऐसी संहिता गठित हुई जिसमें साहूकारों के रजिस्ट्रीकरण, उनकी संविदाओं को अनुशासित करने, ब्याज की दरों को सीमित करने तथा धन उधार देने के संव्यवहारों पर न्यायालय द्वारा विचार किए जाने की व्यवस्था थी।"

2.7. प्राचीन बेबीलोन की हम्मूराबी संहिता[2] में अनाज या चांदी के उधारों पर ब्याज को सीमित करने की विधि थी[3] । हम्मूराबी संहिता और रोमन विधि।

रोमन विधि के अन्तर्गत सूदखोरी अपराध थी और 12 टेबल्स[4] (द्वादश उत्कीर्ण नियमावली) के अनुसार "धन पर ब्याज $8\frac{1}{2}$ प्रतिशत प्रतिवर्ष है। जो सूदखोर इससे अधिक ब्याज की दर से उधार देगा वह दण्ड का भागी होगा"। उत्तर रिपब्लिक और प्रारंम्भिक रोमन साम्राज्य के अधीन ब्याज की अधिकतम दर बारह प्रतिशत नियत की गई थी[5] । इससे अधिक ब्याज की दर प्रभारित करने वाले साहूकार पर विधिक दर से अधिक रकम के चार गुने के लिए वाद लाया जा सकता है। बाद में जस्टीनियन ने इस दर को घटाकर आमतौर पर छह प्रतिशत कर दिया किन्तु उसने व्यापारियों को 8 प्रतिशत और उच्च सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों को केवल 4 प्रतिशत ब्याज वसूल करने की इजाजत दी। इसके अतिरिक्त, उसने चार गुनी शास्ति को समाप्त कर दिया।

---

1. एनसाइक्लोपीडिया, ब्रिटानिका, जिल्द 22, पृष्ठ 908।
2. ड्राइवर और मिल्स द्वारा लिखित बेबिलोनियनस लाज; लीगल कमेंटरी [1956— पृष्ठ 173 जो 18 स्टैंड फ़ोर्ड ला रिव्यू में पृष्ठ 1381 "यूज़ुरी" (सूदखोरी) पर टिप्पण में उद्धृत है]।
3. बेबिलोन की विधि के मूल पाठ के लिए देखिए ड्राइवर तथा मिल्स द्वारा लिखित बेबिलोनियनस लाज : टेक्ट्स एण्ड ट्रांसलेशन (1955) पृष्ठ 39 ।
4. आठवीं टेबल, मद 18, स्टीफ़न द्वारा लिखित हिस्ट्री आफ़ क्रिमिनल ला, जिल्द 1, पृष्ठ 10 ।
5. बर्जर द्वारा लिखित एनसाइक्लोपीडिया डिक्शनरी आफ़ रोमन ला (1953)— पृष्ठ 469, 954 जो 18 सटेंडफ़ोर्ड ला रिव्यू में पृष्ठ 1381 पर "युजरी" पर टिप्पण में उद्धृत है

यहूदी विधि संहिता[1] में हर प्रकार के ब्याज को विधि विरुद्ध घोषित करने वाले व्यापक उपबंध थे और यही चीज पूर्वकालीन ईसाई यूरोप में भी थी।

सूदखोरी के विरुद्ध प्रतिषेध की उत्पत्ति।

2.8. सूदखोरी के विषय में आधुनिक यूरोपीय अनुभव की जड़ें शार्लेमेन के काल में पड़ी थी। उस समय ब्याज लेने के विरुद्ध प्रतिषेध मुख्य रूप से पादरियों के लिए था और इसका स्पष्ट कारण यह था कि ब्याज की वसूली लालच को या कम से कम दीन-वत्सलता के अभाव की द्योतक है[2]। ब्याज प्रभारित करने के विरुद्ध कानून को धीरे-धीरे सर्वसाधारण पर लागू किया गया और दीनवत्सलता के अभाव के रूप में सूदखोरी की सम्पूर्ण संकल्पना से इस विचार में परिवर्तित हो गई कि ब्याज लेना नैतिक अन्याय है और वह चोरी के समान है। इस बारे में काफ़ी मतभेद है कि यह विकास हुआ क्यों। उस समय उधार लेने का सब से अधिक प्रचलित रूप था। बड़े भू-स्वामी द्वारा छोटे कृषक को दिन प्रतिदिन के खर्चे के लिए धन उधार देना। यदि उधार लेने वाला उधार लौटाने में व्यतिक्रम करता था तो साहूकार उसकी सम्पत्ति को अभिगृहीत कर सकता था। अतः और अधिक व्यापक रूप से प्रतिबंध लगाने का एक कारण भू-धृतियों के एकत्रीकरण की गति को धीमा करना रहा होगा।[3]

विद्वान दार्शनिकों ने (i) पादरियों के उपदेशों (ii) रोमन विधि में स्वैच्छिक संविदाओं के वर्गीकरण, और (iii) अरस्तू की धन की अनुर्वरता की संकल्पना के आधार पर ब्याज का ऐसा विश्लेषण करने का कार्य आरम्भ किया जो ऋणी और साहूकार के सभी संबंधों को लागू हो सके। माल को दो वर्गों में विभाजित किया गया। अर्थात् नश्वर या सामान्य और टिकाऊ या विनिर्दिष्ट। टिकाऊ माल (उदाहरणार्थ घोड़ा या मकान) के उपयोग के लिए उसके लौटाए जाने की मांग के अलावा किसी संदाय की मांग करना उचित समझा जाता था[4]। किन्तु किसी नश्वर माल (उदाहरणार्थ रोटी, अनाज या मदिरा) के उपयोग के लिए उसके समतुल्य माल के लौटाए जाने के अलावा कोई प्रभार मांगना न्याय के विरुद्ध घोषित किया गया था। उसे ऐसी वस्तुओं के लिए प्रभार माना जाता था जो अस्तित्व में नहीं हैं क्योंकि ऐसी वस्तुओं के उपयोग का अर्थ है उसका उपभोग या विनाश। धन को नश्वर माल के वर्ग में रखा गया क्योंकि उसके बदले में कोई अन्य माल प्राप्त कर लेने पर उसका उपयोग सम्पन्न हो जाता है और उधार लेने वाले के लिए उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

थामस एक्वीनास का निष्कर्ष था कि "अतः उधार दिए गए धन के उपयोग की कीमत स्वीकार करना एक अवैध कार्य है और इसे सूदखोरी कहा जाता है[5]"।

---

1. कनाफ़ाइड तथा गोल्डिन द्वारा लिखित कोड आफ़ जीविश ला (1963), जिल्द 2, अध्याय 65, पृष्ठ 41, 18 स्टैंडफ़ोर्ड ला रिव्यू में पृष्ठ 1381 पर "यूजुरी" पर टिप्पण में उद्धृत है।

2. नूनन द्वारा लिखित स्कालैस्टिक एनालिसिस आफ़ यूजरी (1957), पृष्ठ 14—17, 18 स्टैंडफ़ोर्ड ला रिव्यू में पृष्ठ 1382 पर "यूजुरी" पर टिप्पण में उद्धृत।

3. नूनन द्वारा लिखित स्कालैस्टिक एनालिसिस आफ़ यूजरी (1957), पृष्ठ 14—17, 18 स्टैंडफ़ोर्ड ला रिव्यू में पृष्ठ 1382 पर "यूजुरी" पर टिप्पण में उद्धृत।

4. थामस एफ़ डिवाइन सेंट लुई विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफ़ेसर—एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, जिल्द 27, पृष्ठ 824 पर "यूजुरी" पर लेख में।

5. सेंट टामस एक्वीनास, एनासाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, जिल्द 27, पृष्ठ 824 पर टामस एफ० डिवाइन द्वारा उद्धृत।

2.9. ब्याज की निन्दा उधार की अंतर्भूत प्रकृति के आधार पर की गई थी फिर भी यदि कुछ बाह्य परिस्थितियां विद्यमान हों तो ब्याज अनुज्ञेय होता था। ये परिस्थितियां उधार देने वाले को हानि या हानि के खतरे के लिए प्रतिकर का हकदार बनाती थीं। उद्योग और वाणिज्य के विकास और विनिधान के लिए उधारों के विस्तार के साथ-साथ विद्वान दार्शनिक कुछ ऐसे हकों के आधार पर ब्याज को उचित ठहराने में अधिकाधिक उदार हो गए, जैसे कि उधार को लौटाने में विलम्ब से हुई हानि या उस लाभ का ब्याज जो उस दशा में अर्जित हुआ होता जिसमें मूलधन को उधार पर न देकर उसे विनिहित किया गया होता या उधार दिए गए धन की हानि की वैसी जोखिम जसी कि पोत के बंधक पर उधार देने जैसे जोखिम पूर्ण कार्य में होती है। बाह्य परिस्थितियों से ब्याज का औचित्य स्थापित होना।

2.10. सूदखोरी के विरुद्ध प्रतिषेध को अधिक व्यापक रूप से लागू करने का एक दूसरा संभव कारण यह है कि मध्ययुगीन दार्शनिक ने केवल ऐसे उदाहरणों को देखा जिनमें उधार लिया गया धन तुरन्त उपभोग की आवश्यक वस्तुओं पर व्यय किया जाता था। अतः उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि धन में ऐसी कोई उत्पादक क्षमता नहीं है जिससे ब्याज का लिया जाना उचित सिद्ध हो। उन्होंने ब्याज और भाटक में प्रभेद किया क्योंकि भूमि में फसल उपजाने की क्षमता होती है और इस कारण पट्टाकर्ता को भाटक वसूल करने का हक होता है जब कि धन में ऐसी कोई क्षमता नहीं होती।

सेन्ट थामस एक्विनास[1] ने इस सिद्धांत को नैसर्गिक नियम में जो उस समय लोकप्रियता अर्जित करता जा रहा था, समाविष्ट किया। उन्हीं के लेखों के कारण यह सिद्धान्त अनेक शताब्दियों तक जीवित रहा। वाणिज्य युग और रिफार्मेशन ने मिलकर इस सिद्धान्त को समाप्त कर दिया।

2.11. मध्ययुग में, सिद्धान्तकारों ने सभी रूप में सूदखोरी की निन्दा की। उनका कहना था कि सूदखोरी धर्मग्रंथों के और दर्शनशास्त्र की शिक्षाओं के विरुद्ध है। किन्तु व्यवहारिक रूप में सिद्धान्तकार इस बात से सहमत थे कि जहां उधार देने वाला कोई जोखिम उठाता है वहां धन के उधार के लिए भुगतान प्राप्त करना वैध हो सकता है, किन्तु जहां ऋण के साथ कोई जोखिम नहीं जुड़ी है वहां ऐसा करना वैध नहीं हो सकता है। जब सामाजिक ढांचा अधिक जटिल हो गया तो यह स्पष्ट हो गया कि उधार के बिना न तो सरकार और न वाणिज्य चल सकता है तथा कुछ उधार ऐसे हैं जिन पर नैतिक आधारों पर सूदखोरी विधियों के व्यापक प्रतिबंध लागू नहीं हो सकते हैं[2]। मध्ययुगीन सिद्धांत।

2.12. अतः व्यवहारिक उपयोग में सूदखोरी के सिद्धांत की कांट-छांट करनी पड़ी और उसे साहूकार द्वारा किए जाने वाले शोषण को रोकने के लिए लागू किया गया। इसका एक उदाहरण इंगलैंड का एक पुराना अधिनियम है जिसमें ब्याज की अधिकतम दर कुछ मामलों में दस प्रतिशत प्रतिवर्ष तय की गई थी। उन मामलों के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट समय के भीतर उधार लौटाने में असफलता सम्मिलित थी। किन्तु इसके अन्तर्गत केवल धन के उपयोग के लिए संदाय नहीं आता। बाद में इंगलैंड में जो विधान बने उनसे यह दर कम कर दी गई और इस विषय पर अर्थशास्त्रियों में एक संविवाद उठ खड़ा हुआ। अंततोगत्वा जान लाक[3] ने यह प्रतिपादित किया कि ब्याज प्रभारित करने की अनुज्ञा देने की व्यवहारिक आवश्यकता।

---

1. थामस एफ० डिवाइन द्वारा एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, जिल्द 27, पृष्ठ 824 पर सेंट थामस एक्विनास का उद्धरण।

2. नूनन रचित स्कालैस्टिक एनालेसिस आफ यूजुरी (1957), पृष्ठ 53 जिसका उद्धरण नोट आन यूजरी, 18 स्टैनफोर्ड ला रिव्यू, पृष्ठ 1382 पर किया गया है।

3. जान लाक रचित "कन्सिड्रेशन आफ दि लोअरिंग आफ इन्टरस्ट" (कृति का 1801 का संस्करण)।

ब्याज की अधिकतम दर नियत करने का प्रयास काल्पनिक है। उसने बताया कि धन की मांग उसकी कीमत को विनियमित करती है। उसने यह दर्शित किया कि बाजार दर से कम विधिक दर से व्यापार में गम्भीर अड़चनें पड़ेंगी क्योंकि तब लोग उस पूंजी को संचित रखना पसंद करेंगे और उसको उधार पर देने की जोखिम नहीं उठाएंगे।

सूदखोरी विधियों के विषय पर बैंथम और एडम स्मिथ के बीच का संविवाद[1] भी सर्वज्ञात है। एडम स्मिथ सूदखोरी विधियों को स्वीकार करता था जब कि बैंथम का यह मत था कि ऐसी विधियों के समर्थन के लिए कोई तर्कसंगत कारण नहीं हो सकता है जो किसी मनुष्य की अपनी ही पूंजी को नियोजित करने की कार्यवाही को स्पष्ट रूप से निर्बन्धित करती हैं। अपने इस विचार के समर्थन में वह एडम स्मिथ के नैसर्गिक स्वतन्त्रता के वचन का हवाला देता है।

कोड नेपोलियन के अनुसार, ब्याज विधिक या संविदागत होता है। विधिक ब्याज विधि द्वारा नियत किया जाता है। संविदागत ब्याज उस दशा में विधिक ब्याज से अधिक हो सकता है जिसमें विधि द्वारा ऐसा आधिक्य प्रतिषिद्ध न हो।

ब्याज प्रभारित करने की स्वतंत्रता—आधुनिक पद्धति की एक विशेषता।

2.13. ऊपर जो विचार किया गया है उससे यह दर्शित होता है कि यदि ब्याज प्रभारित करने के संबंध में विधि द्वारा कोई सीमा अधिरोपित की गई है तो उसके अधीन रहते हुए ब्याज प्रभारित करने की स्वतंत्रता है। अधिकतर आधुनिकतम विधि ण लियें का व्यापक दृष्टिकोण यही है।

इंगलैंड में स्थिति—उस का संक्षिप्त इतिहास।

2.14. इस स्तर पर, इंगलैंड में जो स्थिति है और जो वादजन्य विधि दर्शित होती है उसका संक्षिप्त इतिहास बताना उपयोगी होगा। एडोज **बनाम** हापकिन्ज[2] में लार्ड मेन्सफील्ड ने यह कहने के पश्चात् कि ब्याज व्यापार की विशिष्ट शाखाओं की प्रथा के या किसी विशेष करार के परिणामस्वरूप संदेय हो सकता है, यह कहा कि "यदि जरी सदस्य अपने विवेकानुसार उसे (ब्याज) अनुज्ञात करना उचित समझते हैं तो तंग करने वाली और उत्पीड़क परिस्थितियों में लम्बे विलम्ब की स्थितियों में" ब्याज संदेय हो सकता है, कि विधि का यह कथन काफी व्यापक है और यद्यपि इसमें उत्पीड़न के तथ्य पर बल दिया गया है तथापि इसमें जूरी के "विवेक" पर कोई अन्य रोक की बात नहीं सोची गई है।

लार्ड एलिनबरो का मत।

2.15. एक पश्चात्वर्ती मामले में अर्थात् डी० हेविलैंड **बनाम** बावरबैंक[3] वाले मामले में लार्ड एलिनबरो ने इससे कुछ भिन्न नियम अभिनिर्धारित किया था। उन्होंने कहा था कि ब्याज केवल वहीं पर अनुज्ञेय किया जाना चाहिए जहां किसी निश्चित दिन संदाय करने के लिए संविदा हो जैसे कि विनिमय-पत्रों पर[4] जहां अभिव्यक्त वचन[5] होता है, जहां व्यवहार के अनुक्रम में यह निष्कर्ष निकाला जा सके [6] और जहां धन का वस्तुतः उपयोग किया गया है और उस पर ब्याज लिया गया है। यह प्रतिपादन लार्ड मेन्सफील्ड द्वारा अधिकथित सिद्धान्त की तुलना में अधिक सीमित है[7]।

---

1. बैंथम रचित "इन डिफेंस आफ यूज़ुरी"।

2. एडोज **बनाम** हापकिन्ज 1 डगलस, 376।

3. डी० हेविलैंड **बनाम** बावरबैंक, जिसका हवाला लन्डन चाऊथम आदि रेलवे कम्पनी **बनाम** एस० ई० रेलवे (1893) ए० सी०, पृष्ठ 438 पर दिया गया है।

4. आरनाट **बनाम** रीफर, 3 हांग, 353।

5. एडोज **बनाम** हापकिन्ज, 1 डगलस, 376।

6. ग्रेवन **बनाम** टिकेल, 1 वेसी जूनियर, 60।

7. पूर्वगामी पैरा 214।

2.16. सन् 1893 में लार्ड हरशेल ने हाउस आफ लार्डस में कहा था[1] कि "ब्याज के विषय पर पुराने प्रामाणिक विचारों के संबंध में चाहे जो कुछ कहा जाए मेरी राय तो यह है कि पेज **बनाम** न्यूमैन[2] में लार्ड टेन्टरडेन द्वारा अधिकथित इस विधि पर आपत्ति नहीं की जा सकती है कि जब तक कि लिखत में स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा है कि ब्याज देने का आशय है या जब तक कि यह बात व्यापार की प्रथा से विवक्षित नहीं है, जैसा कि वाणिज्यिक लिखतों में होता है, लिखित लिखत द्वारा प्रतिभूत धन पर ब्याज देय नहीं होता है"।

2.17. इंगलैण्ड में सिविल प्रोसीज्योर ऐक्ट, 1833—जो लार्ड टेन्टरडेन के ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध है—का आशय विधि को अधिक उदार बनाना था। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है वह कानून अधिकार को कम करने के लिए था किन्तु वास्तविकता यह है कि उस कानून का उद्देश्य न्यायालय की शक्ति को व्यापक बनाना था। यह बात ठीक है कि उस ऐक्ट का कोई अधिक प्रभाव नहीं हुआ। इसीलिए सन् 1934 में एक अधिक व्यापक विधायी उपबंध अधिनियमित किया गया था[3]।

लार्ड टेन्टरडेन के ऐक्ट से पहले कामन ला और साम्या (ईक्विटी) में केवल कुछ मामलों में ही ब्याज संदेय था। उस ऐक्ट का उद्देश्य ब्याज मंजूर करने से संबंधित विधि को अधिक उदार[4] न कि कम उदार बनाना था। इस उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए एक परन्तुक जोड़ा गया था जिसके द्वारा उन मामलों को अछूता छोड़ दिया गया था जिनमें उस समय ब्याज का अधिकार पहले से ही मौजूद था जब वह ऐक्ट पास किया गया था। यह कहा गया है कि लार्ड टेन्टरडेन के ऐक्ट का उद्देश्य नियत रकम और नियत तारीख को देय सभी ऋणों को, विनिमय-पत्र के समतुल्य रखना था[5]।

2.18. 1833 के ऐक्ट (लार्ड टेन्टरडेन का ऐक्ट) की धारा 28 में निम्नलिखित उपबंध हैं, अर्थात् :—

> "28. सभी ऋणों या निश्चित रकमों पर, जो किसी निश्चित समय पर या अन्यथा संदेय हैं, किसी विवाद्यक का विचारण करने वाले जूरी सदस्य——यदि ठीक समझें तो उस दशा में जिसमें ऐसे ऋण या ऐसी रकमें किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी समय विशेष पर संदेय हैं, लेनदार को उस समय से जिस समय ऐसे ऋण या निश्चित रकमें संदेय थीं, ब्याज की चालू दर से अनधिक दर से अथवा यदि वे अन्यथा संदेय हैं तो उस समय से जब संदाय की मांग लिखित रूप में ऐसे की गई हो कि उस मांग में ऋणी को यह सूचना दी गई हो कि मांग किए जाने की तारीख से संदाय किए जाने की तारीख तक ब्याज का दावा किया जाएगा, ब्याज अनुज्ञात कर सकते हैं; परन्तु ऐसे सभी मामलों में ब्याज संदेय होगा जिनमें वह अभी विधि द्वारा संदेय है।"

---

1. एल० सी० एण्ड डोवर रेलवे कं० **बनाम** एस० ई० रेलवे कं० (1893) ए० सी० 439 (लार्ड हरशेल)।

2. पेज **बनाम** न्यूमैन, 9 बी० एण्ड सी०, पृष्ठ 378, 381 पर (किंग्स बैंच जिसके अध्यक्ष लार्ड टैन्टरडेन थे और जिसके अन्य सदस्य न्या० बेले लिटिलडेल और पार्क थे)।

3. आगामी पैरा 2.20।

4. लन्दन चैथम एण्ड डोवर रेलवे कं० **बनाम** साउथ ईस्टर्न रेलवे कम्पनी (1893) ए० सी०, पृष्ठ 429 में लार्ड वाटसन का निर्णय देखिए।

5. लंदन चैथम एण्ड डोवर रेलवे कम्पनी **बनाम** साउथ ईस्टर्न रेलवे कम्पनी (1893) ए० सी०, पृष्ठ 429, 437 में विलियम विल्स क्यू० सी० का तर्क।

उक्त ऐक्ट की धारा 29 में निम्नलिखित उपबन्ध है, अर्थात् :—

"29. नुकसानी के किसी विवाद्यक के विचारण या जांच-पड़ताल में, यदि जूरी सदस्य ठीक समझे तो सम्पत्ति सम्प्राप्ति या अतिचार की सभी कार्रवाइयों में संपरिवर्तन या अभिग्रहण के समय माल के मूल्य के अलावा तथा इस ऐक्ट में पारित होने के पश्चात् बीमा पालिसियों की सभी कार्रवाइयों में उस धन के अलावा जो वसूल किया जा सकता है, ब्याज के रूप में नुकसानी दे सकते हैं।"

भारत में स्थिति का अस्पष्ट होना।

2.19. उक्त ऐक्ट के पास होने के पूर्व इंगलैंड में जो विधि थी उसके संबंध में विचार समाप्त होता है। भारत में इस विषय पर स्थिति स्पष्ट नहीं है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि ब्याज और सूदखोरी से संबंधित उपबंध बिखरे हुए हैं और दूसरा कारण यह है कि ब्याज से संबंधित प्रधान विधिक उपबंध[1] का पाठ व्याकरण की दृष्टि से तो पूरा है किन्तु जहां तक सार का संबंध है वह स्वयंपूर्ण नहीं है। यह बात विशेष रूप से अधिनियम की धारा 1 के परन्तुक को लागू होती है[2]।

1934 का इंगलैंड का अधिनियम।

2.20. यह उल्लेखनीय है कि 1934 में इंगलैंड में इस विषय पर विधि को अधिक उदार बनाया गया था और यह कार्य ला रिफार्म (मिसलेनियस प्राविजन्स) ऐक्ट, 1934 की धारा 3 (1) पारित करके किया गया था। इस ऐक्ट के द्वारा किसी ऋण या नुकसानी की वसूली के लिए कार्यवाही में ब्याज मंजूर करने की न्यायालय की शक्ति का विस्तार किया गया था और इसके द्वारा लिखित करार या लिखित सूचना की अपेक्षा को समाप्त कर दिया गया था। इस धारा पर हम विस्तार से आगे चलकर विचार करेंगे[3]।

इंगलैंड में हुए विकास का संक्षेप में वर्णन।

.221. ऊपर जो कुछ कहा गया है उसे संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि काल क्रम की दृष्टि से इंगलैंड की विधि मोटे तौर पर निम्नलिखित स्तरों से होकर गुजरी है, अर्थात् :—

(i) कामन ला में उदार दृष्टिकोण[4]।

(ii) कामन ला में कठोर दृष्टिकोण[5]।

(iii) 1833 के ऐक्ट (लार्ड टेन्टरडेन के ऐक्ट) के द्वारा कामन ला का सीमित विस्तार तक कानूनी रुपान्तर।

(iv) 1833 के ऐक्ट का उदारतापूर्वक अर्थ लगाने में न्यायालयों की आनाकानी और उसी के साथ उस ऐक्ट के संकीर्ण विस्तार की आलोचना।

(vi) 1934 के ऐक्ट द्वारा और उदार उपबंध किया जाना।

(vi) 1934 के ऐक्ट का न्यायिक अर्थान्वियन।

ब्याज का अर्थ।

2.21. अंत में यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी के शब्द 'इन्टरेस्ट' की व्युत्पत्ति मध्य युगीन लेटिन भाषा के शब्द "interse" और "id quod interest" से हुई है और उससे दावेदार द्वारा उठाई गई हानि या नुकसानी का विचार प्रकट होता है जो कि उधार दिए गए धन के लिए पारितोषिक के सूदखोरी वाले विचार के विपरीत है—इसकी तुलना फ्रांसीसी भाषा की अभिव्यक्ति "dommages et interests"[6] से करें।

---

1. ब्याज अधिनियम 1839, धारा 1।
2. आगामी अध्याय 7 देखिए।
3. आगामी पैरा 5.2 देखिए।
4. लार्ड मेन्सफील्ड के निर्णय से तुलना करें।
5. लार्ड एलिनबरो के निर्णय से तुलना करें।
6. वेस्ट मिनिस्टर बैंक लिमिटेड बनाम रिची (1946)। आल इंगल~ रिपोर्ट 466, 472।

2.22. पश्चिमी देशों में हुए विकास का संक्षिप्त सर्वेक्षण हम लोगों ने पूरा कर लिया है और उसके बाद हम यह कह सकते हैं कि भारत में विकास ऊपर बताए गए प्रक्रम सं० 4[1] पर रुक गए और वे अगले कानूनी विकासों के अनुसार आगे नहीं बढ़े हैं और वे स्तर पांच और छह पर नहीं पहुंचे हैं। ये स्तर 1934 के इंगलैंड के ऐक्ट द्वारा और उसके न्यायिक अर्थान्वियन द्वारा प्राप्त हुए थे। भारत में हुए विकास से तुलना।

अध्याय 2क

हिन्दू विधि और मुस्लिम विधि में ब्याज

2क. 1. ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में ब्याज से संबंधित विधि अत्यंत परिष्कृत और विकसित स्तर को प्राप्त कर चुकी थी। इस विषय पर विधि को देखने से प्रकट होता है कि इस संबंध में न केवल गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श हुआ था बल्कि उन विधि में ऐसे नियम भी हैं जो किसी भी विधि प्रणाली के लिए गौरव की वस्तु हो सकते हैं। प्रस्तावना।

2क. 2. उक्त नियमों की विषयवस्तु की बारीकी से जांच करने पर तीन मुख्य बातें सामने आती हैं :— तीन विशिष्ट बातें।

(क) ब्याज के प्रति कड़े रुख से उदार रुख की ओर समय के साथ-साथ विधि का क्रमिक विकास,

(ख) नियमों के परिष्करण का स्तर,

(ग) नियमों की विषयवस्तु का उचित होना।

2क. 3. विधि में क्रमिक रूप से विकास हुआ और ब्याज प्रभारित करने के विषय में पहले जो कठोर रुख था वह अधिक उदार हो गया। इसके उदाहरण स्वरूप यह कहा जा सकता है कि पहले के कुछ लेखकों[2] जैसे कि वशिष्ठ ने ब्याज की अधिकतम दर के विषय में केवल कठोर नियमों का उपबंध ही नहीं किया बल्कि इस बात का भी उल्लेख किया कि कुछ लेखकों का मत था कि ब्याज की उक्त दर एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं दी जानी चाहिए। किन्तु पश्चात्-वर्ती कृतियों में ब्याज के बारे में निर्बन्धनों पर इतनी कड़ाई से जोर नहीं दिया गया था। क्रमिक विकास।

2क. 4. इस विषय पर नियमों के परिष्करण का स्तर ब्यौरों की बातों के संबंध में विभिन्न उपबधों से भी दर्शित होता है, उदाहरण के लिए जब उधार किसी गिरवी द्वारा प्रतिभूत किया गया हो तब ब्याज पर प्रतिबंध लगाने वाले उपबंध विभिन्न प्रकार के विशेष ब्याज जैसे कि मिश्रित ब्याज और दैनिक ब्याज से संबंधित नियम और इसी प्रकार की अन्य सूक्ष्म बातें। परिष्करण।

2क. 5. हिन्दू विधि का दम्दुपत नियम सर्व विदित है। यह कहा जा सकता है कि यह नियम अत्यन्त प्राचीन है और इसका उल्लेख अधिकांश स्मृतिकारों द्वारा किया गया है[3].[4] उदाहरण के लिए वशिष्ठ[5] ने यह नियम निर्धारित किया कि धन उधार देने वाला व्यक्ति ब्याज के रूप में उतनी रकम की मांग नहीं कर सकता है जो उधार दिए गए मूल धन की रकम से अधिक हो ; "स्वर्ण के लिए (उधार की रकम का) दुगना ; अनाज के लिए (उधार की रकम का) तिगुना"। दम्दुपत।

---

1. पूर्वगामी पैरा 2.24 ।

2. वशिष्ठ ने ब्याज लेने की निन्दा की थी। पी० एन० सेन रचित हिन्दू जूरिसप्रूडैंस (1918), पृष्ठ 306 ।

3. गौतम 12-31; मनु 8-51; याज्ञवल्क्य 2-39; विष्णु 6-2-17 ।

4. गंगानाथ झा रचित हिन्दू ला एण्ड इट्स सोर्सेज, जिल्द 1, अध्याय 5 ।

5. वशिष्ठ 2-44 ।

नियमों की विषयवस्तु।

2क. 6. नियमों की विषयवस्तु दिलचस्प है। कुछ मुख्य बातों का उल्लेख किया जा सकता है उदाहरण के लिए ब्याज की दर का प्रश्न लीजिए।

ब्याज की दर।

2क.7. गिरवी के मामले को छोड़ दें तो हम यह पाते हैं कि सामान्यतः ब्याज की दर विधि द्वारा नियत की जाती थी। दर लेनदार द्वारा उठाई जाने वाली जोखिम की मात्रा के अनुसार परिवर्तनीय थी[1]। अतः अप्रतिभूत ऋण पर प्रतिभूत ऋण की तुलना में ब्याज की दर अधिक थी। इसके अतिरिक्त ब्याज की दर ऋणी की जाति के अनुसार भी परिवर्तित होती थी। ऊंची जाति के लोगों को नीची जाति के लोगों की तुलना में निम्नतर दर से ब्याज देना होता था। यह बता देना उचित होगा कि उस काल में सामाजिक ढांचे में जो श्रेणी विभाजन था उस पर आधारित मूल्य के कारण ऐसा किया जाता था।

जब धन उधार देने में कोई असाधारण जोखिम होती थी—उदाहरण के लिए जब ऋणी उधार लेने के बाद किसी वन में से होकर यात्रा पर जाना चाहता था या समुद्र यात्रा करना चाहता था तब यह समझा जाता था कि लेनदार को यह हक है कि वह उस दर से अधिक दर पर जो सामान्यतः अनुज्ञात थी, ब्याज का दावा करे और इसका कारण यह था कि वह मूल धन को ही खो देने की जोखिम उठाता था।

विभिन्न लेखकों ने अधिकतम दरों का उल्लेख भिन्न-भिन्न रूप से किया है और इस संबंध में बहुत बारीकी से विचार करना आवश्यक नहीं है।

अभिव्यक्त अनुबंध न होने की दशा में ब्याज।

2क.8 जहां कोई अभिव्यक्त अनुबंध होता है वहां विधि द्वारा नियत अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए ब्याज अनुज्ञेय था। विलक्षण बात यह थी कि हिन्दू विधि में कुछ परिस्थितियों में ब्याज के बारे में निश्चित संविदा न होने पर भी ब्याज प्रभारित करने की अनुमति दी गई थी।

जहां करार होता है वहां ब्याज भी होता है। किन्तु करार के न होने पर भी जब ऋण के लौटाए जाने की मांग की जाती है और वह लौटाया नहीं जाता है तब मांग की तारीख से ब्याज लगता है। मित्रता के नाते दिए गए उधारों में करार न होने की सूरत में कोई ब्याज प्रभार्य नहीं था। इस नियम की तुलना उस बात से की जा सकती है जो एण्टोनिओ ने शाईलाक से कही थी[2]। अर्थात् "मित्रता में मित्र से ब्याज के रूप में धन लेने का प्रश्न कहां उठता है"।

किन्तु यह माना जाता था कि इस प्रकार के मैत्रीपूर्ण उधार केवल छह मास तक के लिए हो सकते हैं[3]।

विष्णु और नारद

2क9. विष्णु[4] का कथन था कि जब कोई व्यक्ति ब्याज बिना उधार लेता है और निश्चित अवधि के भीतर उसे लौटा देने का वचन देता किन्तु वह उस सीमित समय के भीतर अपना वचन लोभवश पूरा नहीं करता है, तब उस अवधि की समाप्ति के पश्चात् उस ऋण पर ब्याज देय होगा। उस स्थिति में भी जिसमें संविदा द्वारा कोई निश्चित अवधि नियत न की गई हो, विनिर्दिष्ट अन्तराल (नारद[5] के अनुसार छह मास और विष्णु[6] के अनुसार एक वर्ष) बीत जाने के बाद लेनदार विधिक दर से ब्याज प्रभारित कर सकता है। किन्तु कात्यायन के अनुसार ब्याज तब तक नहीं लगाया जाना चाहिए जब तक कि पहले उसकी मांग न की गई हो।

---

1 पी० एन० सेन रचित हिन्दू जूरिसप्रूडैन्स (1918), पृष्ठ 307।

2. मर्चेण्ट आफ़ वेनिस, ऐक्ट 1, सीन 3, पंक्ति 128।

3. नारद 1, 108-109।

4. विष्णु : संस्कृत पाठ के लिए पी० एन० सेन रचित हिन्दू जूरिसप्रूडेन्स (1918) पृष्ठ 406 देखिए।

5. नारद 1, 108।

6. विष्णु।

इससे यह प्रकट होता है कि जहां ब्याज के संदाय के लिए कोई संविदा नहीं है किन्तु उसमें ऐसी नियत अवधि है जिसके भीतर उधार लौटाए जाने का वचन दिया गया है वहां संदाय बिना उस अवधि के बीत जाने के पश्चात् उस ऋण पर ब्याज लगेगा। इतना तो बिल्कुल स्पष्ट है। किन्तु इस बारे में कुछ सन्देह है कि क्या लेन-दार उस स्थिति में भी ब्याज का दावा करने का हकदार होगा जिसमें कि न तो ब्याज के संदाय की कोई संविदा है और न प्रतिसंदाय के लिए कोई नियत अवधि है।

2क. 10. कुछ शास्त्रों में यह कहा गया कि ऐसे मामलों में ब्याज बताए गए निश्चित अन्तरालों की समाप्ति के पश्चात् से लगना चाहिए। इसके विपरीत, कात्यायन स्मृति[1] में यह सुझाव दिया गया है कि ब्याज तब से लगना चाहिए जब मांग की जाने पर ऋणी संदाय करने में असफल रहता है—ऐसी मांग चाहे जब भी की जाए। आरम्भ बिन्दु

2क. 11. कात्यायन स्मृति में (जो एक बृहत्तर शास्त्र[2] का अंतिम भाग है) तीन प्रकार के ऋणी व्यक्तियों की चर्चा की गई है, अर्थात् :— कात्यायन।

"(1) ऐसा ऋणी जो ऋण को चुकाए बिना विदेश चला जाता है।

(2) ऐसा ऋणी जो अपने लेनदार द्वारा यह मांग की जाने के पश्चात् विदेश चला जाता है कि ऋण चुका दिया जाए।

(3) ऐसा ऋणी जो अपने ही देश में रहता है, फिर भी मांग के पश्चात् ऋण नहीं चुकाता है।

इसमें कात्यायन ने उन मामलों के सम्बन्ध में व्यवस्था की है जिसमें ऋणी ने ऐसा ऋण लिया है जिसे याचितिका (मांग पर संदेय) कहा जाता है और वह (ऋणी) मांग की जाने से पहले ही विदेश चला जाता है (और ऐसे मामले में ब्याज के संदाय के लिए कोई संविदा नहीं है)। ऐसे मामलों में ब्याज एक वर्ष के बाद से लगने लगेगा और जहां ऋणी के प्रस्थान से पूर्व, मांग की जाती है वहां ऋणी को तीन मास की मुक्त अनुग्रह अवधि दी जाती है और उसके बाद ब्याज लगना शुरू हो जाता है।

प्रथम वर्ग के संबंध में, ब्याज एक वर्ष के पश्चात् लगने लगता है, दूसरे वर्ग के संबंध में ब्याज तीन मास के पश्चात् लगने लगता है, और तीसरे वर्ग[3] के संबंध में ब्याज ठीक उसी समय से लगने लगता है"।

2क. 12. नारद और कात्यायन की इन स्मृतियों के प्रमाण के आधार पर मिताक्षरा के लेखक विज्ञानेश्वर ने निष्कर्ष निकाल कर बताया है कि आशय यह है कि ब्याज के लिए अनुबंध न होने की स्थिति में, ब्याज मांग की तारीख से संदेय होगा[4]। इस विषय पर विज्ञानेश्वर का भाष्य इस प्रकार है, अर्थात् :— विज्ञानेश्वर।

"उसके बारे में, जो अपने ही देश में रहता है और मांग की जाने पर भी

ऋण नहीं चुकाता है, राजा उससे मांग की तारीख से ब्याज दिलवाएगा[5]।"

---

1. कात्यायन जिनके प्रति अलग से निर्देश किया गया है।
2. देखिए (क) वी० एन० माण्डली रचित हिन्दू ला आर० व्यवहार मयूख, पृष्ठ 103, पंक्ति 11 से 20 तक।
   (ख) स्टोक्स रचित हिन्दू ला बुक्स, पृष्ठ 111-112।
3. देखिए सानदनप्पा बनाम शिवदासप्पा (1907) आई० एल० आर० 31 बाम्बे, पृष्ठ 354, 360 से 363।
4. मिताक्षरा वाई 2-39 के नीचे।

ब्याज की ग्राह्यता ।

2क. 13. संक्षेप में[1]---(1) जो व्यक्ति उधार लिए गए धन को लौटाए बिना किसी दूसरे देश में चला जाता है, वह एक वर्ष बीतने के बाद ब्याज का संदाय करने का दायी होगा ;

(2) यदि वह उधार देने वाले व्यक्ति द्वारा यह मांग की जाने के पश्चात् कि उधार लौटा दिया जाए, विदेश चला जाता है तो उस उधार पर ब्याज तीन मास बीतने के पश्चात् लगने लगेगा ; और

(3) जब उधार लेने वाला देश तो नहीं छोड़ता है किन्तु मांग की जाने पर उधार लौटाने में असफल रहता है तब यद्यपि ब्याज के लिए कोई संविदा न भी हो, उससे ऐसी मांग की तारीख के बाद से ब्याज दिलवाया जाएगा ।

राजा की मृत्यु पर विधिक राज्यान्तराल ।

2क. 4. विशिष्ठ का 'विधिक राज्यान्तराल' का नियम भी दिलचस्प है[2] । उसमें एक अनोखे सिद्धान्त[3] का प्रतिपादन किया गया है । जब राजा की मृत्यु हो जाती है तब उस समय से नए राजा के राज्याभिषेक के समय तक ब्याज का लगना बन्द हो जाता है[4] । सभी शासकीय और विधिक संव्यवहार सत्ताधारी राजा के राजत्वकाल में दिनांकित होते थे और इस काल की गणना उसके राज्याभिषेक के समय से की जाती थी । इस बात को हम अशोक के शिलालेखों और संस्कृत भाषा में लिखी दस्तावेजों के जरिए जानते हैं । दो समय बिन्दुओं---सत्ताधारी राजा की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक---के बीच की अवधि विधिक राज्यान्तराल होता था । विधि की दृष्टि में वह अस्तित्वहीन था और इसलिए, वशिष्ठ के तर्क के अनुसार, उस अवधि के लिए कोई ब्याज गिना नहीं जाता था । किन्तु इस सिद्धांत की चर्चा मनु और याज्ञवल्क्य की संहिताओं में या उनके पश्चात्वर्ती संहिताओं में भी नहीं मिलती है । जायसवाल[3] का कहना है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहारिक बुद्धि वाले विधायकों ने इस सिद्धांत का कभी भी अनुमोदन नहीं किया" ।

सूदखोरी के संबंध में मुस्लिम विधि ।

2क. 15 मुस्लिम विधि के अधीन इस संबंध में स्थिति दिलचस्प है । टी० पी० ह्यूज[5] रचित डिक्शनरी आफ इस्लाम में सूदखोरी के विषय में लिखा है कि ---

"सूदखोरी, अरबी रिबा । यह शब्द हीब्रू भाषा के नेश्चेक शब्द के समान है और इसके अन्तर्गत उधारों पर मिलने वाले सभी अभिलाभ आते हैं---चाहे यह धन के उधार से या माल के या किसी प्रकार की सम्पत्ति के उधार से प्राप्त हों । मूसा नियम में धन या माल के उधार के लिए अभिलाभ कठोरतापूर्वक प्रतिषिद्ध था : "यदि तुम मेरे किसी ऐसे व्यक्ति को उधार देते हो जो तुम से गरीब है तो तुम्हें उसके प्रति सूदखोर के रूप में व्यवहार नहीं करना चाहिए और न तुम्हें उससे ज्यादा सूद वसूल करना चाहिए[6]" । यदि कोई बन्धु गरीब हैं तो उससे अधिक सूद मत लो अथवा उस पर सूद का बोझ बढ़ाओ मत ; बल्कि खुदा से डरो, ताकि तुम्हारा वह बन्धु तुम्हारे साथ जीवित रह सके । तुम उसे सूद पर धन मत दो और न अपने धन की बढ़ोतरी के लिए उसे अपनी खाद्य सामग्री दो[7] ।"

---

1. पी० एन० सेन द्वारा रचित हिन्दू जूरिसप्रूडेन्स (1918), पृष्ठ 308, 309 ।
2. वशिष्ठ 2-49 ।
3. जयसवाल रचित मनु एण्ड याज्ञवल्क्य (1930), पृष्ठ 116, 117 ।
4. बोहलर रचित सेक्रेड बुक आफ दि ईस्ट जिल्द 14, पृष्ठ 15 एन० ।
5. टी० पी० ह्यूज रचित डिक्शनरी आफ इस्लाम (1973) ओरियन्टल पब्लिशर्ज, पृष्ठ 656-657 ।
6. एक्सोड्स XXII, 25 ।
7. लेविटिक्स 35-37 ।

2क. 16. उसी कृति में[1] निम्नलिखित बातें भी कही गई हैं, अर्थात् :—

(1) इस विषय पर कुरान की तालीमात सूरा ii 276 में इस प्रकार दी हुई है : "जो लोग सूदखोर हैं वे कयामत के दिन उसी प्रकार उठेंगे जिस प्रकार शैतान के स्पर्श से प्रभावित व्यक्ति उठता है।" उनका कहना है कि[6] बेचना "सूदखोरी" का ही दूसरा रूप है फिर भी खुदा ने बेचने की इजाजत तो दी है किन्तु सूदखोरी की मनाही कर दी है : और जो कोई अपने खुदा की इस तम्बीह पर ध्यान देकर उससे (सूदखोरी से) परहेज करता है, उसे उसके पुराने गुनाहों के लिए माफी मिल जाएगी और उस पर खुदा की इनायत होगी । लेकिन जो लोग सूदखोरी करेंगे वे आग में डाल दिए जाएंगे और सदैव वहीं पड़े रहेंगे' ।

(2) हदीस के अनुसार कहा जाता है कि मोहम्मद ने यह कहा था कि— "सूद लेने वाले, सूद देने वाले, सूद लिखने वाले और सूद के गवाह पर लानत है क्योंकि वे सभी एक जैसे हैं ।" "दरअसल सूद से हासिल की गई दौलत चाहे वह कितनी ही बड़ी हो, बहुत कम फायदे की होती है" ।
(सहीहु मुस्लिम, बाबुर—रिबा)

(3) विधि की भाषा में रिबा से तात्पर्य है किसी ऐसी विनिमय की संविदा में दो परस्पर विरोधी सजातीय वस्तुओं (या तौल या धारिता के माप) में से एक वस्तु में माप या तौल के विधिक मानक के अनुसार "आधिक्य" जिसमें पक्षकारों की ओर से ऐसे आधिक्य के लिए किसी प्रतिफल के बिना अर्थात् उसके विरुद्ध किसी बात के बिना एक बाध्यकर शर्त के रूप में अनुबंध किया गया है ।

(4) एक अवैध संव्यवहार के रूप में सूदखोरी (मुसलमान विद्वानों के अनुसार) **दर और नकदी** के मिलने से होती है । ध्यान रहे कि मुसलमानों में **दर** केवल धारिता की तौल या माप वाली वस्तुओं को लागू होती है—लम्बाई में नापी जाने वाली वस्तुओं जैसे कपड़ा आदि तथा अंडों, खजूर, आदि वस्तुओं को, जब उनका हाथों-हाथ विनिमय किया जाए, लागू नहीं होती ।

(5) मालिक और गुलाम के बीच सूदखोरी नहीं होती है । इसी प्रकार किसी मुसलमान और शत्रु देश के किसी विरोधी विधर्मी के बीच सूदखोरी नहीं हो सकती है । पैगम्बर के अनुसार "किसी मुस्लिम और विदेश के किसी विरोधी विधर्मी के बीच कोई सूदखोरी नहीं होती"। इसका एक कारण यह भी है कि विरोधी विधर्मी की सम्पत्ति मुस्लिम के लिए मुफ्त होती है, अतः उसे किसी भी प्रकार से लेना विधि पूर्ण है परन्तु ऐसा करने में धोखेबाजी नहीं होनी चाहिए ।

2क. 17. अत्यधिक ब्याज प्राप्त करने वाले व्यक्ति का परिसाक्ष्य न्यायालय में ग्राह्य नहीं है। किन्तु मबसुत में यह लिखा है कि सूदखोर का साक्ष्य केवल तभी अग्राह्य होता है जब वह अत्यधिक सूद लेता हो, क्योंकि मनुष्य अकसर अवैध संविदाएं करते हैं और ये कुछ सीमा तक अति ब्याज वाली संविदाएं होती हैं[2] ।

2क. 18. मुस्लिम विधि के लेखकों के अनुसार, इस विषय में स्थिति यह प्रतीत होती है कि ब्याज प्रभारित करने के विरुद्ध कड़ा प्रतिषेध समय के साथ-साथ अप्रचलित हो गया है । प्रतिषेध का अप्रचलित होना ।

1. टी० पी० ह्यूज रचित डिक्शनरी आफ इस्लाम, ओरियन्टल पब्लिशर्ज, 1973 पृष्ठ 656-657 ।

2. हिदाया ग्रेडी का संस्करण पृष्ठ 362—जिसका हवाला टी० पी० ह्यूज रचित डिक्शनरी आफ इस्लाम (1973) में एविडेंस के नीचे दिया गया है ।

तैयब जी का मत । 2क.19. इस संबंध में तैयब जी[1] एक हदीस उद्धृत करते हैं[2] "अबू हुरैरा ने कहा था : खुदा का कहना है, "इंसान के सामने ऐसा वक्त आ रहा है जब सभी सूदखोर होंगे, यदि कोई सूद नहीं लेगा तो उसका साय उस तक पहुंचेगा जैसे कि सूद देना उसका साक्षी होना या उसका लिखना" ।

किन्तु तैयब जी का यह भी कहना है[3] कि यह प्रतिषेध अप्रचलित हो गया है । चीफ जस्टिस पीकाक ने बहुत पहले एक मामले में जो निर्णय दिया था उसमें[4] मेहर पर ब्याज की गणना को इस आधार पर उचित ठहराया गया था कि वह उस लाभ के प्रतीक स्वरूप है जो हुआ होता ।

मेहर । 2क.20. मेहर पर ब्याज को साम्यापूर्ण प्रतिफलों के आधार पर उचित ठहराया जा सकता है[5] । किन्तु कुछ अन्य मामलों में[6] ब्याज प्रथा के आधार पर अनुज्ञात था । उदाहरणार्थ बोहरा व्यापारियों के बीच ।

अध्याय 2ख

उद्देशिका

उद्देशिका को निकाल देने की सिफारिश। 2ख.1. अब हम अधिनियम में अपेक्षित संशोधनों पर विचार करेंगे । सर्वप्रथम, उद्देशिका से संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रश्न का निपटारा कर दिया जाए । उद्देशिका इस प्रकार है :—

> "ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार के अधीन और अन्यत्र हर मैजेस्टी के न्यायालय की अधिकारिता के भीतर वाले राज्यक्षेत्रों में कतिपय मामलों में ब्याज की अनुज्ञा से संबंधित स्टेटयूट 3 रा और 4 था विलियम IV अध्याय 42 की धारा 28 के उपबंधों का विस्तार करना वांछनीय है ।"

स्पष्ट है कि यह उद्देशिका पुरानी हो गई है और अब यह बिल्कुल अव्यवहार्य और असंगत हो गई है । हमारा मत है कि इसे निकाल दिया जाना चाहिए । यही हमारी सिफारिश भी है ।

अध्याय 3

विधानिक स्थिति और राज्यक्षेत्रिय विस्तार

प्रस्तावना । 3.1. इस अध्याय में हम ब्याज अधिनियम के बारे में, उसकी विषयवस्तु के संबंध में विधायी क्षमता तथा अधिनियम के राज्यक्षेत्रीय विस्तार से संबंधित प्रश्न के हवाले से सांविधानिक स्थिति की चर्चा करेंगे । आरंभ में हम यह बता दें कि विधायी क्षमता के दृष्टिकोण से ब्याज अधिनियम, 1839 की विषयवस्तु को किसी विशिष्ट विधायी प्रविष्टि के अन्तर्गत रखना कठिन है

---

1. तैयब जी द्वारा रचित मुस्लिम ला 1968, पृष्ठ 29, पैरा 4 तथा पाद-टिप्पण 17-18 ।

2. मिसकातुल मसवी, ट्रेडीशन ऐज-टू-इन्टरेस्ट पुस्तक, 12 अध्याय 4 भाग 2 ।

3. तैयब जी द्वारा रचित मुस्लिम ला (1968), पृष्ठ 29 पैरा 4 ।

4. वूमातूल फातिमा बनाम मिरून मुनुइसा (1968), 9 यू० आर०, पृष्ठ 318, 324, 325 ।

5. देखिए तैयब जी रचित मुस्लिम ला (1968) पृष्ठ 135, पैरा, 113 तथा नवासी बेगम बनाम दिलफरेज बेगम, ए० आई० आर० 1927, इलाहाबाद 39 ।

6. एडवोकेट जनरल **बनाम** यसूफ अली (1921), 24 बाम्बे, एल० आर० 1960, 1105 ए० आई० आर० 1921, बाम्बे, 338 ।

जहां तक संविदागत बाध्यता के आधार पर ब्याज के दिए जाने की बात है, यह कहा जा सकता है कि यह अधिनियम समवर्ती सूची की प्रविष्टि 7 "संविदाएं · · · · · ·" के अन्तर्गत आता है। जहां तक ब्याज के दिए जाने का संबंध न्यायालय की प्रक्रिया से है, समवर्ती सूची की प्रविष्टि 13 जो "सिविल प्रक्रिया" से संबंधित है, देखी जा सकती है। इस समय स्थिति यह है कि नुकसानी पर ब्याज अनुज्ञात नहीं है, किन्तु यदि इस संबंध में किसी संशोधन का प्रस्ताव किया जाता है[1] तो समवर्ती सूची की प्रविष्टि 7 "अभियोज्य दोष"––भी सुसंगत होगी।

संविधान में कुछ ऐसी प्रविष्टियां भी हैं जो प्रासंगिक रूप से सुसंगत हैं। उदाहरणार्थ समवर्ती अनुसूची की प्रविष्टि 9 · · · · · · · · · · "दिवाला और शोधक्षमता" तथा अन्य। किन्तु न्यूनाधिक रूप से यह कहा जा सकता है कि ब्याज अधिनियम की विषयवस्तु और उससे सुसंगत संशोधन भागतः समवर्ती सूची में और भागतः अवशिष्ट प्रविष्टि के अन्तर्गत आएगा। यह ध्यान देने की बात है कि यह अधिनियम साहूकारी तक सीमित नहीं है[2]। और इसलिए राज्य सूची की प्रविष्टि 30 जो साहूकारी और साहूकार तथा कृषि ऋणिता के उद्धार से संबंधित है, प्रत्यक्ष रूप से सुसंगत नहीं होगी।

प्रासंगिक रूप से सुसंगत प्रविष्टियां।

3.2. राज्य सूची की निम्नलिखित प्रविष्टियों का ब्याज से प्रसंगतः संबंध है अर्थात् :––

प्रविष्टि 18––कृषि संबंधी उधार;

प्रविष्टि 30––साहूकारी और साहूकार कृषि ऋणिता का उद्धार[3];

प्रविष्टि 43––लोक ऋण

संघ सूची की निम्नलिखित प्रविष्टियों का ब्याज से प्रसंगतः संबंध है, अर्थात् :––

प्रविष्टि 35––संघ का लोक ऋण।

प्रविष्टि 39––डाकघर बचत बैंक।

प्रविष्टि 46––विनिमय पत्र, चैक और वचनपत्र।

भाग ख राज्य।

3.3. ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम का विस्तार उन क्षेत्रों पर नहीं किया है जो भूतपूर्व भाग ख राज्यों में समाविष्ट थे। भाग ख राज्य विधियां अधिनियम में ब्याज अधिनियम की कोई चर्चा नहीं है। कदाचित उस समय जब भाग ख राज्य विधियां अधिनियम अधिनियमित हुआ था, यह सोचा गया कि ब्याज अधिनियम की विषय-वस्तु साहूकारी से संबंधित विधायी प्रविष्टि (जो राज्य सूची में है) के अन्तर्गत आती है। यदि ऐसी कोई उपधारणा की गई थी तो उस पर फिर से विचार करना आवश्यक है। अधिनियम की विषय-वस्तु वस्तुतः अवशिष्ट प्रविष्टि के अन्तर्गत आती है जैसा कि पहले कहा जा चुका है[4]। धारा 1 में प्रयुक्त "ऋण" और "लेनदार" शब्द साहूकारी तक ही सीमित नहीं हैं। यह बताना आवश्यक है कि प्रवर्तनशील उपबंध अर्थात् धारा 1––साहूकारों और उधार लेने वाले व्यक्तियों के बीच के संव्यवहारों तक ही सीमित नहीं है––चाहे धारा 1 की भाषा से अन्य कोई भी परिसीमा लागू होती है। मोटी तौर पर, धारा 1 के अधीन, यदि उस धारा की अन्य शर्तें पूरी होती हैं तो किसी भी ऋण या निश्चित राशि पर ब्याज दिलाया जा सकता है और यह आवश्यक नहीं है कि उस ऋण या निश्चित राशि की उत्पत्ति में साहूकारी का कोई तत्व होना चाहिए। वास्तव में, कृषि संबंधी ऋणिता के उधार से संबंधित या साहूकारी के कारबार का विनियमन करने वाला विधान ब्याज प्रभारित करने से सुसंगत मूल या प्रक्रियात्मक निबन्धन, राज्य सूची द्वारा राज्यों को इस निमित्त दी गई विनिर्दिष्ट शक्ति के आधार पर लगा सकता है। उस शक्ति का अर्थात् साहूकारी से

1. जिस रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है उसके बारे में चर्चा देखिए आगामी अध्याय 5।

2. आगामी पैरा 3.2 देखिए।

3. पूर्वगामी पैरा 3.1 देखिए।

4. पूर्वगामी पैरा 3.1 और 3.2 देखिए।

संबंधित शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाई गई विधि के लिए राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त कर नी होगी जिससे कि उस पर यह आपत्ति न की जा सके कि वह समवर्ती सूची के किसी विषय पर केन्द्रीय विधान के प्रतिकूल है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्याज अधिनियम की विषय-वस्तु राज्य सूची के अन्तर्गत आती है।

प्रसंगवश हमने यह देखा है कि इंडिया कोड[1] में ब्याज अधिनियम, जिल्द 6, भाग 6, पृष्ठ 3 पर, "साहूकारी" (मनी लेंडिंग) शीर्ष के अन्तर्गत छपा है। शायद यह मान लिया गया था कि यह अधिनियम मुख्य रूप से उधार लेने और उधार देने के संव्यवहारों के विषय में है। किन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं[2] यह मानना सही नहीं होगा और न इसका कोई ठोस आधार है।

ब्याज अधिनियम साहूकारी तक ही सीमित नहीं है।

3.4. हमारा मत है कि अधिनियम की धारा 1 में प्रयुक्त शब्दों से यह दर्शित होता है कि अधिनियम का तात्पर्य केवल या मुख्य रूप से साहूकारी के विषय में उपबंध करना नहीं है। उसका क्षेत्र इससे कहीं अधिक व्यापक है। यदि कुछ मामलों में यह प्रतीत होता है कि वह साहूकारी के संव्यवहारों को लागू होता है तो यह केवल उस अधिनियम के प्रासंगिक रूप से लागू होने की बात है। प्रसंगतः साहूकारी से संबंधित राज्य विधान के अन्तर्गत आने वाले अधिकांश साहूकारी के संव्यवहार में ब्याज के संदाय का उपबंध होता है और इन्हीं उपबंधों के कारण यह बात है कि ऐसे संव्यवहार जो ऐसे अधिनियमों के अन्तर्गत आते हैं धारा 1 के क्षेत्र से बाहर हैं। अतः सार-मर्म यह है कि अधिनियम उन विषयों को लागू होता है जो संघ सूची में अवशिष्ट प्रविष्टि के अन्तर्गत आते हैं, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं[3]।

आगे हम जो विवेचन करेंगे उससे यह दर्शित होगा कि जब भी न्यायिक निर्णयों में धारा 1 के प्रविषय और प्रभाव के बारे में विचार करने की बात उठी है, उन निर्णयों में विवादग्रस्त अधिकांश सव्यवहार तकनीकी दृष्टि से "साहूकारी" से भिन्न संव्यवहार थे।

धारा 1 में विस्तार खण्ड के बारे में सिफारिश।

3.5. यह सिफारिश करने में सांविधानिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि अधिनियम का विस्तार सम्पूर्ण भारत पर होगा[4]। ऐसे संशोधन से एकरूपता का जो लाभ प्राप्त होगा वह स्पष्ट है। अतः हम सिफारिश करते है कि इस प्रयोजन के लिए अधिनियम में निम्नलिखित विस्तार खण्ड जोड़ा जाना चाहिए अर्थात् :—

"इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़ कर सम्पूर्ण भारत पर है।

इण्डिया कोड में दिए गए टिप्पण के कारण भाग ख राज्यों के बारे में गलतफ़हमी।

3.6. यह उल्लेखनीय है कि इस प्रश्न पर कि क्या ब्याज अधिनियम, 1839 का विस्तार भूतपूर्व भाग ख राज्य के क्षेत्रों पर है, जो गलतफ़हमी है वह इंडिया कोड में छपे अधिनियम के अंग्रेजी पाठ के पाद टिप्पण के कारण उत्पन्न हुई है। इस पाद टिप्पण में यह कहा गया है कि अनुसूचित जिलों के कुछ क्षेत्रों के बारे में छोड़कर अधिनियम को विधियों का स्थानीय विस्तार अधिनियम, 1874 की धारा 3 द्वारा "सभी राज्यों में" प्रवृत्त घोषित किया गया है। किन्तु तथ्य यह है कि विधियों का स्थानीय विस्तार अधिनियम, 1874 में ऐसी कोई घोषणा नहीं की गई है। इसके विपरीत उस अधिनियम की धारा 3 (जैसी कि वह इण्डिया कोड में छपी है[5]) में जहां यह घोषणा की गई है कि उस अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित अधिनियमितियों का विस्तार जिनमें ब्याज अधिनियम भी सम्मिलित है, भाग ख राज्यों में पहले समाविष्ट क्षेत्रों को स्पष्ट रूप से अपवर्जित किया गया है।

---

1. इंडिया कोड, जिल्द 6, भाग 6, पृष्ठ 3।
2. पूर्वगामी पैरा 3.1 और 3.2।
3. पूर्वगामी पैरा 3.1।
4. पूर्वगामी पैरा 3.3।
5. इंडिया कोड जिल्द 2-सी० भाग 4, पृष्ठ 27।

उक्त धारा इस प्रकार है :—

विधियों का स्थानीय विस्तार अधिनियम, 1874 की धारा 3 का उद्धरण
(इंडिया कोड जिल्द 2-सी, भाग 4, पृष्ठ 27)

"3. इससे उपाबद्ध प्रथम अनुसूची में उल्लिखित अधिनियम अब उन राज्यक्षेत्रों को, जो 1 नवम्बर, 1956 के ठीक पूर्व भाग ख राज्यों में समाविष्ट हुए तथा अनुसूचित जिलों को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में[1] प्रवृत्त है।[2]

(ब्याज अधिनियम, 1839 का उल्लेख अधिनियम की प्रथम अनुसूची में किया गया है)।

3.7. इस विषय पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया जा सकता है। स्वतंत्रता के पूर्व ब्याज अधिनियम, 1839 अपने ही बल से ब्रिटिश भारत के बाहर प्रवृत्त नहीं था। यदि ब्रिटिश भारत के बाहर किसी क्षेत्र पर उसका विस्तार किया जाना था तो यह कार्य केवल उपयुक्त केन्द्रीय विधान या उपयुक्त प्रांतीय अथवा राज्य विधान द्वारा जो स्वतंत्रता के बाद अधिनियमित किया गया हो, किया जा सकता था। यहां पर हमारा संबंध प्रांतीय या राज्य विधान से नहीं है क्योंकि ऐसा विधान केवल स्थानीय रूप से लागू होगा। किन्तु जहां तक केन्द्रीय विधान का संबंध है न तो भाग ख राज्य विधियां अधिनियम और न किसी अन्य केन्द्रीय अधिनियम ने ब्याज अधिनियम, 1839 का विस्तार भाग ख राज्य के किसी क्षेत्र पर स्पष्ट रूप से किया गया है। अतः स्थिति यह प्रतीत होती है कि जहां तक उन क्षेत्रों का संबंध है जो पहले भाग ख राज्य में सम्मिलित थे, ब्याज अधिनियम पर उन सांविधानिक परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है जो स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप हुए हैं। अधिनियम में कोई विस्तार खण्ड नहीं है। इसलिए इस संबंध में स्थिति भाग ख राज्य के क्षेत्रों पर विद्यमान विधियों के विस्तारण से संबंधित विभिन्न केन्द्रीय अधिनियमों का अध्ययन करके संशोधित की जानी है और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है ऐसे अध्ययन से नकारात्मक परिणाम निकले हैं।

स्वतंत्रता के बाद अधिनियम का विस्तार केन्द्रीय विधान द्वारा नहीं किया गया।

अध्याय 4

धारा 1—न्यायालय की शक्ति और केवल ब्याज के लिए वाद

4.1. अब हम प्रवर्तनशील उपबंध का विवेचन करेंगे। अधिनियम में केवल एक धारा है जो इस प्रकार है :

धारा 1—प्रवर्तनशील उपबंध—विश्लेषण।

" 1. ब्याज अनुज्ञात करने की न्यायालय की शक्ति—अतः इसके द्वारा यह अधिनियमित किया जाता है कि किसी निश्चित समय पर या अन्य रूप में संदेय सभी ऋण या निश्चित राशियों पर वह न्यायालय जिसके समक्ष ऐसे ऋण या ऐसी राशियां वसूल की जा सकेंगी, ठीक समझे तो, उस दशा में जिसमें ऐसे ऋण या ऐसी राशियां किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय हों, उस समय से जब ऐसे ऋण या निश्चित राशियां संदेय हैं अथवा यदि वे अन्य रूप में संदेय हैं तो उस समय से जब संदाय की मांग लिखित रूप में ऐसे की गई हो कि उससे ऋणी को यह सूचना दी गई हो कि ब्याज का दावा ऐसी मांग की तारीख से संदाय के समय तक के लिए किया जाएगा ब्याज की चालू दर से अनधिक दर से ब्याज लेनदार को अनुज्ञात कर सकेगा।"

---

1. विधियों का अनुकूलन (सं० 2) आदेश, 1956 द्वारा "भाग ख राज्य" के स्थान पर रखा गया।

2. अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा "को छोड़कर भारत के सभी प्रांतों में" के स्थान पर रखा गया।

यह धारा कुछ बेढंगी सी हो गई है। इसमें अनेक बातों की चर्चा है, अर्थात् :—

(क) ब्याज अधिनिर्णीत करने की न्यायालय की शक्ति ;

(ख) वे रकमें जिनके हवाले से इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है ;

(ग) न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत किए जाने वाले ब्याज की दर ;

(घ) ब्याज लगना आरम्भ होने की तारीख ;

(ङ) विद्यमान विधियों के संबंध में व्यावृत्ति (परन्तुक में) ।

हम इन बातों पर क्रम से विचार करेंगे और यह बताएंगे कि इनमें से प्रत्येक बात के संबंध में हम किस संशोधन की सिफ़ारिश करते हैं ।

पूरा की जाने वाली शर्तें ।

4.2. थावरदास बनाम भारत संघ[1] में न्यायाधीश सिन्हा ने ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने के लिए शर्तों का विश्लेषण करते हुए कहा था कि इससे पूर्व कि अधिनियम के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत किया जाए अन्य शर्तों में से निम्नलिखित शर्तें अवश्य पूरी होनी चाहिएं, अर्थात् :—

(1) कोई ऋण या निश्चित राशि होनी चाहिए ;

(2) वह किसी निश्चित समय पर या अन्य रूप से संदेय होनी चाहिए ;

(3) यह ऋण या राशियां किसी लिखित संविदा के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय होनी चाहिए ;

(4) यह आवश्यक है कि लिखित मांग की गयी हो जिसमें यह कहा गया हो कि मांग की तारीख से ब्याज मांगा जाएगा ।

यह उल्लेखनीय है कि न्यायाधीश सिन्हा द्वारा उल्लिखित शर्तें (3) और (4) एक दूसरे की वैकल्पिक हैं और वे एक साथ लागू नहीं हो सकती। या तो ऐसी लिखित लिखत होनी चाहिए जिसमें समय निश्चित किया गया हो या फिर लिखित मांग होनी चाहिए। इन पहलुओं पर हम आगे चलकर विस्तार से विचार करेंगे।[2]

ब्याज अधिनिर्णीत करने की न्यायालय की शक्ति ।

4.3. जहां तक ब्याज अधिनिर्णीत करने की न्यायालय की शक्ति का संबंध है यह उल्लेखनीय है कि धारा 1 में इस शक्ति के बारे में यह कहा गया है[3] कि इसका प्रयोग वह न्यायालय कर सकता है "जिसके समक्ष ऐसे ऋण या ऐसी राशियां वसूल की जा सकेंगी"। इन शब्दों के कारण अनेक प्रश्न उत्पन्न हुए हैं। पहला प्रश्न तो यह है कि क्या ये शर्तें साधारण सिविल वाद तक सीमित हैं ? यह उल्लेखनीय है कि इंगलैंड के वर्तमान तत्स्थानीय ऐक्ट[4] में निम्नलिखित रूप में एक उपबंध है (केवल तात्विक भाग उद्धृत किया गया है)।

"(1) किसी ऋण या नुकसानी की वसूली के लिए किसी ऐसी कार्यवाही में जिसका विचारण किसी अभिलेख न्यायालय में हो रहा है, यदि न्यायालय ठीक समझता है तो वह आदेश दे सकेगा कि उस राशि में जिसके लिए निर्णय दिया गया है, पूरे ऋण या नुकसान पर या उसके किसी भाग पर वाद हेतुक उत्पन्न होने की तारीख और निर्णय की तारीख के बीच की पूरी अवधि या उसके किसी भाग के लिए ऐसी दर से जो वह (न्यायालय) ठीक समझता है, ब्याज सम्मिलित किया जाएगा"।

---

1. थावरदास बनाम भारत संघ, ए० आई० आर० 1955 एस० सी० 468, पैरा 30 (1955) 2 एस० सी० आर० 48 ।

2. आगामी अध्याय 5 ।

3. पूर्वगामी पैरा 4.1 ।

4. ला रिफार्म (मिसलेनियस प्रोविजन्स) ऐक्ट, 1934 की धारा 3 (1) ।

4.4. यह अभिनिर्धारित किया गया है[1] कि इंगलैंड के तत्समान उपबंध [2-3] के अधीन अप्रतिभूत लेनदार परिसमापन कार्यवाहियों में ब्याज का दावा नहीं कर सकता है चाहे यह पाया जाए कि उस कम्पनी के पास जिसका परिसमापन किया जा रहा है अधिशेष धन है। परिसमापन कार्यवाहियों के संबंध में स्थिति ।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह निर्वचन हमारे अधिनियम की धारा 1 को भी लागू होगा। निःसन्देह परिसमापन कार्यवाही में ब्याज के विनिर्दिष्ट प्रश्न के संबंध में कम्पनी नियम [4] का उपबंध पर्याप्त हो सकता है। कम्पनी (न्यायालय) नियम, 1959 का नियम 156 इस प्रकार है :—

"156.—ब्याज—किसी निश्चित समय पर या अन्य रूप में संदेय किसी ऐसे ऋण या निश्चित राशि पर जिस पर ब्याज आरक्षित या तय नहीं है, और जो, यथास्थिति, परिसमापन के आदेश या संकल्प की तारीख को अतिशोध्य है, लेनदार यदि ऋण या राशि किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय है तो, उस समय से जब ऋण या राशि संदेय है, और यदि ऋण या राशि किसी अन्य रूप में संदेय है तो उस समय से जब यह सूचना देते हुए लिखित मांग की गई है कि मांग की तारीख से संदाय की तारीख तक के लिए ब्याज का दावा किया जाएगा, उस तारीख तक, "चार प्रतिशत प्रतिवर्ष से अनधिक दर से ब्याज के लिए सबूत दे सकेगा। "

4.4क. आमतौर पर वादों से भिन्न कार्यवाहियां इस धारा की परिधि से बाहर होंगी हमारा मत है कि धारा का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे कि उसके अन्तर्गत वादों से भिन्न कार्यवाहियां भी आ जाएं। ब्याज अधिनिर्णीत करने के विवेक की आवश्यकता अन्य कार्यवाहियों के संबंध में भी उतनी ही है जितनी की साधारण सिविल वाद के संबंध में है। इस प्रयोजन के लिए हम धारा में एक संशोधन की सिफारिश कर रहे हैं। वादों से भिन्न कार्यवाहियों को इसके अंतर्गत लाना।

4.5. धारा 1 में "न्यायालय" शब्द का व्यापक अर्थान्वयन किया गया है। यह अभिनिर्धारित किया गया है[5] कि कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय धारा 1 के अर्थ के अन्तर्गत "न्यायालय" है और इसलिए वह उस सूरत में जबकि ब्याज का दावा करते हुए लिखित मांग की गई हो, ब्याज अधिनियम के अधीन नियोजक द्वारा देय अभिदाय की बकाया राशि पर ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है। कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय ।

4.6. न्यायालय की शक्ति के प्रश्न से संबंधित प्रश्न यह है कि क्या यह आवश्यक है कि लिखित लिखत हो। धारा के तात्विक शब्द इस प्रकार हैं[6]—"उस दशा में जिसमें ऐसे ऋण या ऐसी राशियां किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय हों——————अथवा यदि वे अन्यथा संदेय हों तो उस समय से जब संदाय की मांग लिखित रूप में ऐसे की गई हो,——————"(धारा का शेष भाग हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए तात्विक नहीं है। विचार के लिए प्रश्न यह उठता है कि क्या "अन्यथा" शब्द "लिखित लिखत" शब्दों के विरुद्ध पढ़े जाने हैं अथवा इस से केवल "किसी निश्चित समय पर" शब्दों के विपरीत स्थिति दर्शित होती है। दोनों ही अर्थान्वियन सम्भव हो सकते हैं। वर्तमान प्रयोजन के लिए इन दोनों अर्थान्वयनों लिखित लिखत की आवश्यकता के बारे में संदिग्धता ।

1. फ़ाइन इण्डस्ट्रीयल कमाडिटीज लिमिटेड (1955) 3 आल इंगलैंड रिपोर्ट्स 707, 709 (न्या० वेसे)।

2. ला रिफ़ार्म (मिसलेनियस प्रोविजन्स) ऐक्ट, 1934 की धारा 3 (1)।

3. पूर्वगामी पैरा 4.3।

4. कम्पनी (न्यायालय) नियम, 1959 का नियम 156।

5. रीड कोआपरेटिव टिम्बर वर्क्स लिमिटेड बनाम इ० एस० आई० कार्पोरेशन, 1: (1970) 2 एम० एल० जे० 40 : ए० आई० आर० 1970 मद्रास 439।

6. पूर्वगामी पैरा।

के परस्पर गुणागुण पर विचार करना आवश्यक नहीं है । किंतु अच्छे विधान की दृष्टि से इस बात का कोई कारण नहीं है कि यह तथ्य कि कोई लिखित लिखत नहीं है, धारा के अधीन ब्याज अनुज्ञात करने के लिए न्यायालय को विवेक देने के संबंध में तात्विक हो । निःसंदेह ऋण सृजित करने वाली लिखित लिखत का विद्यमान होना साक्ष्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और यह एक व्यवहारिक महत्व की बात है क्योंकि उससे तथ्य संबंधी विवाद कम होते हैं । किन्तु इस बात से उस स्थिति में जब कोई लिखित विलेख न हो ब्याज अनुज्ञात करने के मार्ग में तब बाधा नहीं आनी चाहिए जब कि मामले में न्यायालय की दृष्टि से ब्याज अधिनिर्णीत करना अपेक्षित हो । लिखित लिखत में ऋण की उत्पत्ति तथा किसी निश्चित समय पर उसका संदेय होना ब्याज का लगना प्रारम्भ होने के संबंध में निश्चय करने के लिए व्यवहार में विभेद का औचित्य माना जा सकता है किन्तु इसके संबंध में यह नहीं माना जा सकता कि इससे ब्याज की ग्राह्यता का आधार ही नष्ट हो जाता है ।

अतः इस प्रयोजन के लिए हम धारा में एक संशोधन की सिफारिश कर रहे हैं जिससे कि यह स्पष्ट हो जाए कि उक्त धारा के अन्तर्गत ऐसा मामला भी आता है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है ।

केवल ब्याज के लिए वाद ।

4.7. दूसरी बात यह है कि ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रश्न पर कुछ संविवाद रहा है कि क्या ब्याज की वसूली मात्र के लिए वाद चलाया जा सकता है । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया है ।[1] आधार यह बताया गया कि अधिनियम न्यायालय को केवल विवेक प्रदान करता है और लेनदार को ऐसा कोई "अधिकार" प्राप्त नहीं है । किन्तु इस विषय पर लाहौर उच्च न्यायालय का मत उसके विपरीत था ।[1] लाहौर उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के अनुसार विधि में ऐसी कोई बात नहीं है जो किसी लेनदार को केवल ब्याज की वसूली के लिए वाद लाने से प्रतिषिद्ध करती है । शर्त केवल यह है कि उसने ब्याज अधिनियम द्वारा अपेक्षित औपचारिकताओं का अनुपालन किया हो और उसके मामले को अन्यथा भी उक्त अधिनियम लागू होता हो ।

इस विषय पर नागपुर के विनिश्चय[3-4] परस्पर विरुद्ध हैं इसलिए इस संबंध में विचार करना आवश्यक है । हम आगे[5] चल कर निर्णय विधि के संबंध में विस्तार के साथ विचार करेंगे । पहले हम धारा की भाषा को देख लें ।

धारा 1—आरम्भिक शब्द ।

4.8. धारा 1 के आरम्भिक शब्दों से प्रकट होता है कि उस धारा के अन्तर्गत ऐसे मामले आते हैं जो "किसी निश्चित समय पर या अन्यथा संदेय सभी ऋण या निश्चित राशियों" से संबंधित हैं और यह धारा उस समय से जब ऐसे ऋण या निश्चित राशियां संदेय हुए हों, ब्याज की चालू दर से अनधिक दर पर ब्याज लेनदार को अनुज्ञात करने के लिए न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करती है । ऐसे ऋण या राशियां

---

1 मार्शल बनाम बंगाल स्पिनिंग आदि कम्पनी (1897) 1 कलकत्ता डब्ल्यू० एन० 219 ।

2. भण्डारी ब्रदर्स बनाम म्यूनिसिपल कमेटी, ए० आई० आर० 1931 लाहौर 457–462, जिसमें मार्शल बनाम बंगाल स्पिनिंग आदि कम्पनी (1897) 1कलकत्ता डब्ल्यू० एन० 219 वाले मामले में दिए गए निर्णय से विसम्मत निर्णय दिया गया ।

3. म्यूनिसिपल कमेटी बनाम एस० एस० जी० पी० फैक्टरी, ए० आई० आर० 1938 नागपुर 119, 122 (न्या० नियोगी) (नीचे 1944 के जिस मामले का उल्लेख किया गया है उसमें इस निर्णय को ध्यान में नहीं लिया गया) ।

4. वेस्टर्न इंडिया लाइफ इंशोरेन्स कम्पनी बनाम सीताबाई, ए० आई० आर० 1944 नागपुर, 122, 123 (न्या० बोबडे) ।

5 आगामी पैरा 4.9 ।

किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय हो सकती हैं अथवा वे अन्यथा संदेय हो सकती हैं । ऐसी कोई स्पष्ट शर्त नहीं है कि मूलधन का बकाया होना आवश्यक है । पश्चात् कथित दशा में न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उस समय से ब्याज अधिनिर्णीत करे जब संदाय की मांग लिखित रूप में ऐसे की गई हो कि उससे ऋणी को यह सूचना दी गई हो कि ब्याज का दावा ऐसी मांग की तारीख से संदाय के समय तक के लिए किया जाएगा । धारा के परन्तुक में यह विहित है कि ऐसे सभी मामलों में ब्याज संदेय होगा जिनमें अभी विधि द्वारा ब्याज संदेय है ।

परन्तुक के अधीन आने वाले मामलों को यदि हम छोड़ दें तो हम यह देखेंगे कि धारा में विहित किसी दर से ब्याज अधिनिर्णीत करने की न्यायलय की अधिकारिता तब उत्पन्न होती है जब वह न्यायलाय ऐसा न्यायालय है "जिसके समक्ष ऋण या निश्चित राशि वसूल की जा सकेगी" । ये शब्द संदिग्धार्थी हैं, जैसा कि प्रकाशित मामलों[1] से प्रकट होता है ।

4.9. अब हम इस प्रश्न पर कि क्या केवल ब्याज के लिए वाद सक्षम है, धारा 1 के निर्वचन के बारे में न्यायिक विनिश्चयों पर विचार करेंगे । आइए हम लाहौर वाले मामले[2] से प्रारम्भ करें । उस मामले में वादियों ने अमृतसर की नगरपालिका समिति को बड़ी मात्रा में कोयले का प्रदाय किया था । बिलों का भुगतान बहुत समय तक नहीं किया गया और इसलिए वादियों ने नगरपालिका समिति को अनेक सूचनाएं दीं और कहा कि उन बिलों पर जिनका भुगतान नहीं किया गया है ब्याज लिया जाएगा । बाद में समिति ने उन बिलों का भुगतान ब्याज के बिना किया । परिणामस्वरूप वादियों ने केवल ब्याज के लिए वाद संस्थित किया । यह आपत्ति की गई कि केवल ब्याज के लिए वाद संस्थित नहीं किया जा सकता है । इस आपत्ति को न मंजूर करते हुए उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ब्याज अधिनियम के अधीन उस दशा में केवल ब्याज के लिए वाद प्रतिषिद्ध नहीं है जिसमें कि ऋणी ने वाद संस्थित करने के पूर्व मूलधन का भुगतान कर दिया हो । उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि वादियों ने अपने कोयले के कारबार को चलाने के लिए उधार ली गई रकम पर 9% प्रतिवर्ष की दर से अपने बैंकों को ब्याज का भुगतान किया था । इसलिए वह रकम दिलाना उचित है । इस मामले में ब्याज की जिस रकम के लिए दावा किया गया था वह लगभग 25000/-- थीं । न्यायाधीश जयलाल के निर्णय से लिया गया निम्नलिखित उद्धरण ज्ञानवर्द्धक है :--

> "मैं अधिनियम का इस प्रकार अर्थान्वियन करने में असमर्थ था कि यदि किसी वाद के संस्थित किए जाने के पूर्व ऋणी ने मूलधन का भुगतान कर दिया हो तो केवल ब्याज के लिए वाद को प्रतिषिद्ध कर दिया जाए ।"

उस मामले में काउंसेल ने अधिनियम के इन शब्दों का सहारा लिया "वह न्यायालय जिसके समक्ष ऐसे ऋण या ऐसी निश्चित राशियां वसूल की जा सकेंगी--और उन्होंने यह दलील पेश की कि इन शर्तों का अर्थ यह है कि ऋणों या निश्चित राशियों के तथा उन पर ब्याज के लिए वाद संस्थित किया जाना चाहिए मानो कि "वसूल की जा सकेगी" वसूल करने का आशय है"

इस तथ्य के संबंध में न्यायाधीश जयलाल ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :--

> "उनसे केवल वह न्यायालय विनिर्दिष्ट होता है जिसके पास ब्याज के लिए वाद को ग्रहण करने की अधिकारिता है अर्थात् उस में यह उपबंध है कि जिस न्यायालय में ब्याज की वसूली के लिए वाद संस्थित किया जा सकता है वह न्यायालय

ब्याज के लिए वाद के बारे में न्यायिक विनिश्चय ।

---

1 आगामी पैरा 4.9 ।

2. भंडारी ब्रदर्स बनाम म्यूनिसिपल कमेटी अमृतसर, ए० आई० आर० 1931 लाहौर 457, 462, (न्या० जयलाल, न्या० अब्दुल कादिर) ।

ऐसा न्यायालय है जिसके पास ऐसे ऋण या निश्चित राशियों की वसूली के लिए किसी वाद को ग्रहण करने की अधिकारिता है । यदि विद्वान काउंसेल की दलील सही है तो उससे बेतुकी स्थिति पैदा हो सकती है । मान लीजिए कि किसी लेनदार को एक सौ रु० का मूलधन शोध्य है और वह ऋणी को यह सूचना दे देता है कि सूचना की तारीख से ब्याज का दावा किया जाएगा तथा उसके बाद मान लीजिए कि ऋणी 10–10 रुपए की 9 मासिक किस्तों में मूलधन मद्धे 90 रुपए दे देता है और उन किस्तों को लेनदार, ब्याज के लिए अपने अधिकार का अधित्यजन किए बिना अथवा ऐसे अधिकार को स्पष्ट रूप से आरक्षित किए बिना, उस रूप में स्वीकार कर लेता है किन्तु बाद में वह 10 रुपए "और उतने ब्याज की जो मूल धन के अनेक अतिशेषों पर उद्भूत हुआ है, वसूली के लिए वाद संस्थित करता है तो क्या यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि 10 रुपए की मूलधन की बकाया रकम पर केवल ब्याज का दावा किया जा सकता है और पूरे मूलधन पर अथवा उसकी अलग-अलग बकाया रकमों पर ब्याज का दावा नहीं किया जा सकता ? मेरे विचार से इस दलील का कोई औचित्य नहीं है----"

4.10. इस विषय पर इस मामले में विधि के साधारण नियमों के दृष्टिकोण से विचार किया गया है । साम्या के पहलू के उदाहरणस्वरूप हम नागपुर के एक मामले[1] को ले सकते हैं । वह वाद एक विधवा ने बीमा पालिसी के बारे में केवल ब्याज के लिए चलाया था। नवम्बर, 1940, से 25 जून, 1941 तक के 7 महीनों के लिए 6% प्रतिवर्ष की दर से ब्याज का दावा किया गया था । बहुत विलम्ब के पश्चात् बीमा कम्पनी ने उस मूलधन का भुगतान किया जो वादी के पति की मृत्यु के कारण देय हो गया था । यह रकम 18 जून, 1941 को बैंक द्वारा भेजी गई और इसे वादी ने स्वीकार कर लिया । लघुवाद न्यायालय ने बीमा कम्पनी के विरुद्ध इस आधार पर ब्याज अधिनिर्णीत किया था कि इस मामले में अनुचित रूप से लापरवाही की गई । साम्या का पहलू।

रिपोर्ट से यह स्पष्ट नहीं है कि वादी ने ब्याज की मांग कब की । मामले का विनिश्चय ब्याज अधिनियम के हवाले से किया गया था और बीमा कम्पनी की एक आपत्ति यह थी कि केवल ब्याज के लिए वाद संस्थित नहीं किया जा सकता । उच्च न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया । इस दलील के समर्थन में किसी प्रामाणिक निर्णय का हवाला नहीं दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि कलकत्ता वाले मामले का हवाला नहीं दिया गया[2] । उच्च न्यायालय इस विषय पर लाहौर वाले मत[3] से सहमत था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि परिसीमा अधिनियम[4] के अनुच्छेद 63[4] से यह प्रतीत होता है कि केवल ब्याज के लिए वाद पूर्णतः सम्भव है । उच्च न्यायालय के अनुसार केवल ब्याज के लिए वाद के चलाए जाने के संबंध में सैद्धांतिक रूप से कोई आपत्ति नहीं हो सकती ।

प्रतिवादी के काउंसेल ने संविदा अधिनियम[5] की धारा 63 का आश्रय लिया । किन्तु उच्च न्यायालय ने पहले तो यह कहा कि (धारा 63 को लागू करने के लिए) आवश्यक बातें नहीं हैं और दूसरी बातें यह हैं कि इस मामले में जिस ब्याज के लिए

1. वेस्टर्न इंडिया लाइफ इन्शोरेंस कम्पनी **बनाम** सीताबाई, ए० आई० आर० 1944 नागपुर 122 (न्या० बोबडे) ।
2. मार्शल का मामला, पूर्वगामी पैरा 4.7 ।
3. भडारी ब्रदर्स **बनाम** म्युनिसिपल कमेटी अमृतसर, ए० आई० आर० 1931 लाहौर-45 ।
4. परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 63 जिसके प्रति आगे चलकर निर्देश किया गया है ।
5. संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 63 जिसके संबंध में विस्तृत चर्चा आगे की गई है ।

दावा किया गया है वह किसी ऐसे वचन के आधार पर नहीं है जिसके पालन से "अभिमुक्ति या उसका परिहार" किया जा सके । इसलिए धारा 63 सुसंगत नहीं है।

4.11 नागपुर के एक मामले[1] में, जिसका दृष्टिकोण सीमित था, अकोला की नगरपालिका समिति ने एक कर के संदाय की मांग की थी किन्तु प्रतिवादियों ने कर के संदाय के दायित्व के विषय में आपत्ति की । उस मुकदमें के इतिहास से हमें कोई सरोकार नहीं है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि मई, 1929 में उस नगरपालिका समिति ने एक सूचना देकर कर के संदाय की मांग की । उसमें कर की बकाया रकम पर 12.1/2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज की मांग भी सम्मिलित थी । नवम्बर और दिसम्बर, 1929 में उस नगरपालिका समिति ने कर की बकाया रकम, ब्याज के बिना वसूल की । मुकदमेंबाजी के असफल होने के बाद ही ऐसा हुआ । उसके बाद समिति ने प्रतिवादियों पर ब्याज की मांग की एक नई सूचना की तामील की। प्रतिवादियों ने ब्याज का भुगतान नहीं किया इसलिए नगरपालिका समिति ने, नगरपालिका अधिनियम के अधीन उस रकम की वसूली के लिए मजिस्ट्रेट से आवेदन किया।

मजिस्ट्रेट ने आवश्यक वारण्ट जारी किया किन्तु अपील में, उपायुक्त ने यह अभिनिर्धारित किया कि केवल ब्याज की वसूली की मांग की सूचना अवैध है और परिणामस्वरूप वह वारण्ट भी अवैध है । तब नगरपालिका समिति ने वह वाद फाइल किया, जिसकी हम इस समय चर्चा कर रहे हैं । उस वाद में, जहां तक सुसंगत है, एक प्रश्न यह था कि क्या वादी ऐसे कर पर, जिसका भुगतान नियत तारीख को तो नहीं किन्तु बाद में कर दिया गया था ब्याज वसूल कर सकता है । उच्च न्यायालय ने ब्याज के उस दावे को निम्नलिखित आधारों पर, नामंजूर कर दिया, अर्थात् :—

"यदि यह मान भी लिया जाए कि नगरपालिका अधिनियम की धारा 77 के होते हुए भी सिविल न्यायालय को अधिकारिता है, तो भी मेरी समझ में यह नहीं आता है कि जब मूलधन की वसूली हो चुकी है उसके बाद केवल ब्याज की वसूली के लिए समिति का दावा कैसे टिक सकता है। इस मामले की परिस्थितियों में सिविल न्यायालय को ब्याज अधिनियम, 1839 (1839 का 32) या संविदा अधिनियम की धारा 73 के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति हो सकती है । पश्चात् कथित उपबंध लागू नहीं हो सकता है क्योंकि अधिकार किसी संविदा पर आधारित नहीं है और ऐसी किसी संविदा का भंग नहीं हुआ है । ब्याज अधिनियम के अधीन, न्यायालय को उस समय ब्याज अधिनिर्णीत करने का विवेकाधिकार है जब नियत समय पर संदेय किसी ऋण या निश्चित राशि की वसूली के लिए दावा किया गया हो । किन्तु यदि यह मान लिया जाए कि देय होने के बाद कर को ऋण माना जा सकता है तो, नगरपालिका समिति अपना ऋण पहले ही वसूल कर चुकी है । ब्याज अधिनियम सिविल न्यायालय को शक्ति प्रदान करता है किन्तु वह किसी लेनदार के पक्ष में कोई अधिकार सृजित नहीं करता है और इसलिए यह बात किसी वाद की विषय-वस्तु नहीं हो सकती है ।" इस प्रकार नागपुर उच्च न्यायालय के विनिश्चयों में परस्पर विरोध है[2] । एक निर्णय में व्यापक दृष्टिकोण और दूसरे में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है ।

4.12 कलकत्ते वाले मामले में एक विद्वान् न्यायाधीश ने अपने चैम्बर में कहा था कि :—

---

1. अकोला म्युनिसिपल कमेटी बनाम एस० जी० एण्ड प्रेसिंग फैक्टरी ए० आई० आर० 1938 नागपुर 119 (न्या० नियोगी)।

2. पूर्वगामी पैरा 4.10 और 4.11

3. मार्शल बनाम दि बंगाली स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी (1897) 1 सी० डब्ल्यू० एम० 279 (जिसका हवाला लाहौर वाले मामले में दिया गया है)—ए० आई० आर० 1931, लाहौर 457 ।

"पहले तो यह देखना है कि वादीगण ने जिस अधिनियम (1839 का 32) का आश्रय लिया है वह केवल समर्थ बनाने वाला अधिनियम है जिसके द्वारा किसी निश्चित समय पर संदेय ऋणों और निश्चित राशियों पर कुछ परिस्थितियों में, ब्याज अधिनिर्णीत करने का विवेकाधिकार न्यायालय को दिया गया है। अधिनियम में ऐसा कुछ नहीं है जो लेनदारों के पक्ष में ब्याज का अधिकार सृजित करता है जो वाद की विषय-वस्तु हो सकती है और मैं समझता हूं कि यही बात उस दावे का निपटारा करने के लिए पर्याप्त है जो उस किस्त की बाबत जिसका भुगतान वाद के पूर्व किया गया था, ब्याज के संबंध में है।"

लाहौर वाले मामले[1] में, जिसका हम ऊपर हवाला दे चुके हैं, न्यायाधीश जयलाल ने उक्त मत की आलोचना करते हुए कहा था कि :–

"आदर सहित, मैं उनके विचारों के आधारभूत कारणों से सहमत होने में असमर्थ हूं। निस्सन्देह यह सच है कि ब्याज अधिनिर्णीत करने और दर नियत करने का प्रश्न न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया गया है किन्तु केवल इसी कारण यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि लेनदार के पास ब्याज के लिए वाद लाने का कोई वाद हेतुक नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें विधान मण्डल ने अनुतोष प्रदान करने और उसके विस्तार की बात न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी है किन्तु यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं होगा कि ऐसे मामलों में वादी को केवल उसी आधार पर, उस अनुतोष के लिए वाद लाने का हक नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि प्रकाशित मामला उस ब्याज की वसूली के लिए था जो कुछ डिबेंचरों पर शोध्य था और यह वाद को खारिज करने के लिए विद्वान न्यायाधीश द्वारा बताया गया एक अतिरिक्त आधार था।"

संविदा अधिनियम की धारा 63

4.13 इस प्रसंग में एक उपबंध जिस पर हमें विचार करना है, भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 63 है जिसका हवाला नागपुर वाले मामले[2] में दिया गया था। यह विवादास्पद है कि क्या यह कहा जा सकता है कि ब्याज अधिनियम के अधीन के प्रत्येक मामले में वचनदाता और वचनग्रहीता का संबंध (केवल इसी को धारा 63 लागू होती है) विद्यमान होता है ? हमें इस विषय पर इसलिए विचार कर लेना चाहिए क्योंकि उसका हवाला नागपुर वाले मामले में दिया गया था। धारा 63 वचनग्रहीता द्वारा छूट के संबंध में है। उस धारा में उपबंध है कि :—

"63. हर वचनग्रहीता अपने को दिए गए वचन के पालन से अभिमुक्ति या उसका परिहार पूर्णतः या भागतः दे या कर सकेगा या ऐसे पालन के लिए समय बढ़ा सकेगा या उसके स्थान पर किसी तुष्टि को, जिसे वह ठीक समझे, प्रतिगृहीत कर सकेगा।"[3]

4.14 यह उल्लेखनीय है कि इस धारा में यह उपबंध नहीं है कि ऋण के भाग का प्रतिग्रहण स्वयं में सम्पूर्ण ऋण की तुष्टि की कोटि में आता है। वह धारा वचन के पालन के संबंध में भागतः छूट देने की बात वचनग्रहीता पर छोड़ती है। सम्पूर्ण ऋण की तुष्टि के रूप में प्रतिग्रहण आवश्यक है। यह बात उक्त धारा के दृष्टांत (क) और (ख) से स्पष्ट हो जाती है। उक्त दृष्टांत इस प्रकार है :—

(संविदा अधिनियम की धारा 63 के दृष्टांत)।

"(ख) ख का क 5000 रुपए का देनदार है। क उस समय और स्थान पर, जिस पर 5000 रुपए देय थे, ख को 2000 रुपए देता है और ख

---

1. देखिए लाहौर वाला मामला, पूर्वगामी पैरा 4.9।
2. वेस्टर्न इंडिया लाइफ इंश्योरेंस कंपनी बनाम सीताबाई, पूर्वोक्त।
3. दृष्टांत उद्धृत नहीं किए गए।

सम्पूर्ण ऋण की तुष्टि में उन्हें प्रतिगृहीत कर लेता है। सम्पूर्ण ऋण का उन्मोचन हो जाता है।

(ग) ख का क 5000 रुपए का देनदार है। ख को ग 1000 रुपए देता है और ख उन्हें क पर अपने दावे की तुष्टि में प्रतिगृहीत कर लेता है। यह संदाय सम्पूर्ण दावे का उन्मोचन है।

4.15. भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 41 अन्य व्यक्ति के पालन के प्रतिगृहीत किए जाने के संबंध में है। किन्तु यह धारा कम से कम भारत में, हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए विशेष महत्व की नहीं है। जिस बात पर बल देना है वह यह है कि संविदा अधिनियम की धारा 63 केवल तभी लागू होती है जब वचनग्रहीता अपने को दिए गए किसी वचन के पालन से भागतः अभिमुक्ति देता है अथवा वचन के पालन की बजाय कोई ऐसी तुष्टि प्रतिगृहीत करता है जो वह ठीक समझे। इस प्रकार विकल्प वचनगृहीता का होता है।

4.16. दिगम्बर वाले मामले में[1] न्यायाधीश मुखर्जी और ट्यूनन ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यद्यपि दावे की पूरी रकम से कम रकम का दिया जाना अविधिमान्य हो सकता है तथापि भागतः संदाय के रूप में दी गई किसी रकम को स्वीकार करने से लेनदार को रोकने वाली कोई बात नहीं है और यदि लेनदार ऐसा करता है तो वह बाद में अपने हिसाब की शेष रकम के लिए दावा करने से प्रवारित नहीं होगा। परन्तु इसके साथ सदैव यह शर्त है कि ऋणी ने उस रकम को देते समय यह शर्त नहीं जोड़ी हो कि उसे पूरे ऋण के उन्मोचन के रूप में स्वीकार कर लिया जाए। यही मत बिहारी लाल **बनाम** नसीमुन्निसा बीबी[2] के मामले में न्यायाधीश मुखर्जी और रैंकिन द्वारा दोहराया गया था।

अतः भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 63 में किसी बड़ी रकम के देय होते हुए कोई छोटी रकम अभिगृहीत करने पर ही बल नहीं दिया गया है बल्कि सम्पूर्ण ऋण के उन्मोचन में उस छोटी रकम के अभिगृहण पर बल दिया गया है। जब लेनदार एक बार धन को इस रूप में अभिगृहीत कर लेता है तब वह और अधिक रकम के लिए दावा करने से विबंधित हो जाता है। किन्तु यह धारा केवल तभी सुसंगत है जब संबंध वचनदाता और वचनग्रहीता के बीच का होता है।

4.17. यह उल्लेखनीय है कि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 का अनुच्छेद 63 इस प्रकार है[3]। परिसीमा अधिनियम।

स्तंभ (1)—————— ।

स्तंभ (2) वादी को प्रतिवादी से देय धन पर ब्याज के लिए संदेय धन के लिए।

स्तंभ (3) 3 वर्ष।

स्तंभ (4) जब ब्याज देय हो जाता है।"

यह अनुच्छेद दर्शाता है कि ऐसा वाद न लाया जाए।

4.18. वर्तमान धारा के अन्तर्गत विधि का जो रूप इस प्रकार सामने आता है उसको दृष्टि में रखते हुए हमारे विचार के लिए प्रश्न यह उठता है कि क्या हमें यह सिफारिश करनी चाहिए कि धारा को इस प्रकार समुचित रूप से संशोधित किया जाना चाहिए जिससे कि ऐसे मामलों में जिसमें लेनदार को संदेय किसी ऋण या निश्चित राशि का भुगतान ऋणी द्वारा कर दिया गया है, लेनदार केवल ब्याज की वसूली के लिए वाद ला सके अथवा विधि का संशोधन इसके विपरीत दिशा में किया जाना चाहिए। सिफारिश।

---

1. दिगम्बर **बनाम** हरेंद्र (1910) 14 कलकत्ता डब्ल्यू० एन० 617 (न्या० मुखर्जी और ट्यूनन)।
2. बिहारी लाल **बनाम** नसीमुन्निसा बीबी, ए० आई० आर० 1923 कलकत्ता 527।
3. अब परिसीमा अधिनियम, 1

हम ने इस समस्या के अच्छे और बुरे पहलुओं पर ध्यानपूर्वक विचार कर लिया है और हमारा यह समाधान हो गया है कि यह आरम्भिक प्रतिषेध कि लेनदार केवल ब्याज की वसूली के लिए दावा नहीं कर सकता है---जो प्रतिषेध संकीर्ण निर्वचन करने पर उत्पन्न होगा---न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण के किसी आधार पर न्यायोचित नहीं है ।

हम इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं कि उक्त धारा के पाठ के संबंध में कलकत्ता वाला दृष्टिकोण (संकीर्ण दृष्टिकोण) सही है या लाहौर वाला दृष्टिकोण (व्यापक दृष्टिकोण) सही है । सिद्धांत रूप में हमारी यह राय है कि ऐसे मामले में जिसमें मूल धन का भुगतान कर दिया गया है केवल ब्याज के लिए वाद लाना अनुज्ञेय होना चाहिए । यदि संकीर्ण अर्थान्वयन मान लिया जाता है तो दायी व्यक्ति वाद के ठीक पूर्व मूलधन का भुगतान कर देगा और इस प्रकार धारा का उद्देश्य विफल कर देगा । यह बात अनुचित होगी अतः हम व्यापक दृष्टिकोण के अपनाए जाने और उस प्रयोजन के लिए धारा का संशोधन करने की सिफारिश करते हैं ।

ब्याज क्यों मंजूर किया जाता है ।

4.19. यह उल्लेखनीय है कि आम तौर पर ब्याज संदाय में हुए अनुचित विलम्ब के लिए प्रतिकर के रूप में मंजूर किया जाता है । यह समझ पाना कठिन है कि जो व्यक्ति देय रकम का भुगतान करने में अनुचित विलम्ब करता है उसे ब्याज के संदाय के दायित्व से केवल इसलिए क्यों छूट दे दी जानी चाहिए कि उस रकम का भुगतान वाद फाइल करने के पूर्व कर दिया गया है । ऐसे मामले में कोई भी साम्यापूर्ण बात नहीं है । बल्कि सभी साम्या उसके द्वारा किए गए अनुचित विलम्ब के कारण और ऋण को अनुचित रूप से रोके रखने के कारण तथा उस लाभ के कारण जो वह उस रकम को विनिहित कर के साधारणतः प्राप्त करता है, उसके विरुद्ध हैं ।

4.20. यदि विधि का संशोधन कलकत्ता वाले दृष्टिकोण[1] के आधार पर किया जाना है तो परिणाम यह होगा कि यदि ऋणी ने उस ऋण का, भुगतान जो उसके द्वारा संदेय है लेनदार को भुगतान कर दिया है तो उन दोनों प्रकार के मामलों में जो उक्त धारा के पश्चात्वर्ती भाग में उल्लिखित हैं। लेनदार केवल उस ब्याज की वसूली के लिए जो उसको शोध्य हो, ऋणी के विरुद्ध कार्रवाई नहीं कर सकता है। इस प्रकार दावा करने के विरुद्ध जो प्रतिषेध है वह स्पष्ट रूप से तभी लागू होगा चाहे लेनदार ने ऋण को इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया हो कि उसे इस बात का अधिकार है कि वह ब्याज की रकम को वाद ला कर वसूल कर ले । हमारे विचार से यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है ।

4.21. मान लिया जाए कि लेनदार ऋणी को यह सूचना देता है कि यदि वह उस ऋण का भुगतान जो उसको शोध्य है विनिर्दिष्ट तारीख तक नहीं कर दिया जाता है तो वह विनिर्दिष्ट तारीख से उस ऋण पर ब्याज का दावा करेगा । यदि ऐसे मामले में सूचना के जारी किए जाने के पश्चात् और उक्त तारीख के बीत जाने के पश्चात् ऋणी उस ऋण का भुगतान कर देता है जो उसके द्वारा देय है किन्तु उस पर उस ब्याज का भुगतान करने में असफल रहता है जो देय हो गया है तो सिवाय उस दशा के जिसमें कि लेनदार ने ब्याज के लिए अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया हो, ऐसे ब्याज की वसूली के लिए दावा करने से लेनदार को रोकना अनुचित प्रतीत होता है । निःसन्देह न्यायालय अपने इस विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि क्या ब्याज अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए और यदि हां, तो किस दर से । किंतु इस उपबंध के अधीन रहते हुए केवल ब्याज के लिए दावे को आरम्भ से ही पूर्णतः वर्जित नहीं किया जाना चाहिए । हम तदनुसार धारा 1 में समुचित संशोधन[2] की सिफारिश करेंगे ।

---

1. पूर्वगामी पैरा 4.18 और 4.19 ।
2. धारा का नया प्ररूप आगे दिया गया है ।

प्रसंगवश हमने इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि क्या केवल ब्याज के लिए वाद को अनुज्ञात करने की हमारी सिफारिशों[1] के परिणामस्वरूप परिसीमा अधिनियम में कोई संशोधन करना आवश्यक होगा । इस संबंध में उल्लेखनीय है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 25 (पुराना अनुच्छेद 63) अथवा अधिनियम का अवशिष्ट अनुच्छेद ऐसे मामले को लागू होगा । अतः परिसीमा अधिनियम में कोई संशोधन आवश्यक नहीं प्रतीत होता है ।

4.22. ब्याज के लिए दावों के प्रश्न का विवेचन समाप्त होता है । अब हम धारा 1 से संबंधित अन्य बातों पर विचार करेंगे । धारा 1 का पुनरीक्षण करते समय यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि— दो मामलों के लिए व्यावृत्ति की सिफारिश— (क) करार द्वारा या अन्यथा साधिकार संदेय ब्याज, (ख) विनिमय पत्र ।

(क) इस धारा की कोई बात किसी ऐसे ऋण के संबंध में लागू नहीं होगी जिस पर, किसी करार के आधार पर ब्याज साधिकार संदेय है, और

(ख) इस धारा की किसी बात का प्रभाव किसी विनिमय पत्न, वचनपत्र या चैक के अनादृत होने के परिणामस्वरूप वसूल किए जा सकने वाले प्रतिकर पर नहीं पड़ेगा ।

इस व्यावृत्ति खण्ड का कारण स्पष्ट है । पहले वाले मामले में, करार अभिभावी होना चाहिए[2] । दूसरे वाले मामले में, अनादरण के लिए प्रतिकर के संबंध में परक्राम्य लिखत अधिनियम का विशेष उपबंध अभिभावी होता है ।[3]

4.23. यदि ब्याज न देने की अभिव्यक्त संविदा है (अर्थात् ब्याज को प्रतिषिद्ध करने की संविदा है) तो धारा 1 के अधीन ब्याज अनुज्ञात नहीं हो सकता है । धारा 1 और उसके प्रतिकूल करार।

4.23क. हमारा मत है कि इस आशय का एक अभिव्यक्त उपबंध आवश्यक है कि अधिनियम— ब्याज का अधिकार विधि या संविदा द्वारा प्रदत्त है, तथा विनिमय पत्र आदि के आनादरण पर ब्याज । अभिव्यक्त करार द्वारा प्रतिषिद्ध ब्याज ।

(क) उन मामलों को जिनमें ब्याज का अधिकार पृथक् रूप से विधि या संविदा द्वारा प्रदत्त है, या

(ख) किसी विनिमय पत्र, वचनपत्र या चैक के अनादरण पर ब्याज को,

लागू नहीं होना चाहिए ।

हमारा यह भी मत है कि अधिनियम ऐसे मामले को भी लागू नहीं होना चाहिए जिसमें अभिव्यक्त करार द्वारा ब्याज प्रतिषिद्ध है ।

अध्याय 5

रकम जिस पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है

5.1. जहां तक उस रकम का संबंध है जिसके बारे में न्यायालय धारा 1 के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है, यह उल्लेखनीय है कि वह रकम "ऋण या निश्चित राशि"[4] होनी चाहिए । यह पद विन्यास नुकसानी को निश्चित रूप से अपवर्जित करता है और इसलिए अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या नुकसानी को इस धारा के अंतर्गत लाना चाहिए । रकम जिस पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है।

5.2. इस संबंध में यह उल्लेखनीय है इंगलैंड में इस विषय से संबंधित विधि[5] का संशोधन 1934 में किया गया था । इंगलैंड में इस समय जो कानूनी उपबंध है उसे, तुरंत संदर्भ के लिए, नीचे पुनः उद्धृत[6] किया जा रहा है : इंगलैंड का 1934 का ऐक्ट ।

---

1. पूर्वगामी पैरा 4.18।
2. अन्य विधि के उपबंधों के लिए धारा 1 के परन्तुक से संबंधित विवेचन देखिए ।
3. परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1882 की धाराएं 30, 31, 79, 80 और 117 देखिए ।
4. "निश्चित राशि" के संबंध में आगामी पैरा 5.5 देखिए ।
5. ला रिफार्म (मिसलेनियस प्राविजन्स) ऐक्ट, 1934 की धारा 3 (1) ।
6. पूर्वगामी पैरा 4.3 भी देखिए ।

"3. ऋणों और नुकसानी पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की अभिलेख न्यायालय की शक्ति---(1) किसी ऋण या नुकसानी की वसूली के लिए किसी ऐसी कार्यवाही में जिसका विचारण किसी अभिलेख न्यायालय में हो रहा है, न्यायालय, यदि ठीक समझे तो आदेश दे सकता है कि उस राशि में जिसके लिए निर्णय दिया गया है, सम्पूर्ण ऋण या नुकसानी पर या उसके किसी भाग पर, वाद हेतुक उत्पन्न होने और निर्णय की तारीख के बीच की सम्पूर्ण अवधि या उसके किसी भाग के लिए ऐसी दर पर ब्याज सम्मिलित किया जाएगा जो वह ठीक समझे :

परन्तु इस धारा की कोई बात---

(क) ब्याज पर ब्याज का दिया जाना अनुज्ञात नहीं करेगी, या

(ख) ऐसे ऋण के संबंध में लागू नहीं होगी जिस पर किसी करार के आधार पर या अन्यथा, ब्याज साधिकार संदेय है, या

(ग) विनिमयपत्र के अनादरण के लिए वसूल की जा सकने वाली नुकसानी पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

यह उपधारा सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 की धारा 28 और धारा 29 के स्थान पर रखी गई है। कुछ अर्थों में निरसित उपबंध उन उपबंधों से अधिक व्यापक थे जो इस उपधारा में अधिनियमित किए गए हैं।[1] किंतु अपकृत्य की कार्रवाई में, निरसित उपबंध निस्सन्देह संकीर्ण थे क्योंकि वे केवल ट्रोवर या अतिचार के लिए नुकसानी के रूप में ब्याज प्राधिकृत करते थे। नया उपबंध किसी भी अपकृत्य के लिए नुकसानी के किसी भी अधिनिर्णय पर ब्याज के अधिनिर्णय की अनुज्ञा देता है शर्त केवल यह है कि वह न्यायालय के विवेकानुसार हो।[2]

हम समझते हैं कि नुकसानी पर ब्याज की अनुज्ञा देने वाला इंगलैंड की विधि का यह उपबंध[3] सिद्धांत रूप में ठीक है और इसे नीचे बताए गए विस्तार तक, हमें अपनी विधि में सम्मिलित कर लेना चाहिए---

(क) जहां तक इंगलैंड के ऐक्ट की यह धारा ऋण या नुकसानी पर वाद फाइल करने के पूर्व की अवधि के लिए ब्याज से संबंधित है, इस समय धारा 1 के अंतर्गत न आने वाले ऋणों पर अर्थात् नुकसानी पर ब्याज अनुज्ञात करने के लिए आवश्यक संशोधन अधिनियम में उपबंध जोड़ कर किया जाना चाहिए।

(ख) जहां तक वाद फाइल करने के पश्चात् की अवधि का संबंध है, वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 से संबंधित है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धारा[4] इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत, वाद संस्थित करने के बाद की अवधि के लिए, नुकसानी पर ब्याज का अधिनिर्णीत किया जाना अनुज्ञात है।[5]

---

1. फाइन इंडस्ट्रियल कमोडिटीज लिमिटेड (1955) 3 आल इंगलैंड रिपोर्ट्स 707, 709; (1956) चांसरी 256, 261 (न्या० वाइसे के अनुसार)।
2. कार बनाम बाक्साल (1960), आल इंगलैंड रिपोर्टर 495।
3. ला रिफार्म (मिसलेनियस प्राविजन्स) ऐक्ट, 1934 (24 और 25 जियो० 5 चां० 41) की धारा 3।
4. भगवन्त बनाम गंगाबिसन, ए० आई० आर० 1940 बाम्बे 369।
5. साधारणतः नुकसानी पर ब्याज के विषय में देखिए :---
   (क) डोमीनियन आफ इंडिया बनाम ए० आई० आर० लि०, ए० आई० आर० 1952, नागपुर 32,
   (ख) अर्जुनसा बनाम मोहन लाल, ए० आई० आर० 1937, नागपुर 345।

5.3. नुकसानी के इस विनिर्दिष्ट प्रश्न के अलावा "ऋण" शब्द के अर्थ के बारे में कुछ अन्य बातों पर विचार करना उचित होगा। किसी भी कानून में "ऋण" शब्द का अर्थ संदर्भ पर निर्भर करता है। यह हो सकता है कि एक ही कानून में अर्थात् दिवाला अधिनियम में जो चीज दिवाले के एक प्रयोजन के लिए "ऋण" है वही चीज दूसरे प्रयोजन के लिए ऐसी न हो।[1]

धारा 1 में "ऋण" का अर्थ।

5.4. "ऋण" का प्राचीन कामन ला में अर्थ उन वाद हेतुकों तक सीमित था जो "ऋण" की कार्रवाई में प्रवर्तनीय थे जैसे कि वे वाद हेतुक जो योग्यतानुसार और मूल्यानुसार संदाय करने के बंधपत्र, पत्रों (नोट्स) और अन्य अभिव्यक्त वचनों से[2] उत्पन्न होते हैं। निस्सन्देह, ब्याज अधिनियम का आशय ऐसे वाद हेतुकों को सम्मिलित करना है। किन्तु वह इन्हीं वाद हेतुकों तक अर्थात् "ऋण" के वादी में प्रवर्तनीय मांगों तक सीमित नहीं है। स्टेट्यूट आफ मेटर्न[3] का हवाला देते हुए लार्ड कोक[4] ने कहा था[5] "ऋण" से केवल वह ऋण इंगित नहीं है जिसके लिए ऋण का वाद लाया जा सकता है बल्कि पार्लियामेंट के इस प्राचीन ऐक्ट में यह साधारणतः उप शुल्क को इंगित करता है जिसका भुगतान किया जाना है———।

कामन ला में "ऋण" का अर्थ।

5.5. कामन ला में स्थिति यह है[6] कि यदि कोई लेनदार दोषपूर्णतः रोक रखे गए माल की वसूली के लिए राज्य की बाध्यकारी शक्ति की सहायता प्राप्त करना चाहता है तो उसे ऋण या रोक रखने की बाबत[7] वाद लाना होगा। विलेख द्वारा प्रतिभूत धन की वसूली का उपचार ऋण का वाद है। उसने अपना अनिवार्य रूप और गुण कामन ला प्रक्रिया के सारे इतिहास के दौरान, जहां तक कार्रवाई के रूप परिरक्षित रखे गए, कायम रखा।

"ऋण" का वाद।

ऋण के लिए वाद, विलेख द्वारा सबूत के बिना भी लाया जा सकता है[8]। इस प्रकार का वाद उधार दिए गए धन या बेचे और सौंप दिए गए माल की कीमत आदि के लिए लाया जा सकता है तथा निरुद्ध माल (जो ऋण का ही एक रूप है), की बहाली का दावा उपनिधान पर दी गई जंगम वस्तुओं के लिए किया जा सकता है। ऐसे मामलों में प्रतिवादी द्वारा कोई वाद नहीं बल्कि वादी के धन या माल का उसके (प्रतिवादी के) कब्जे में होना वाद हेतुक होता है।

निरुद्ध माल की बहाली का दावा केवल विनिर्दिष्ट जंगम वस्तुओं के लिए हो सकता था उस माल के परिदान का दावा, जिसकी अभी तक पहचान नहीं हुई है, "निरुद्ध ऋण" है।

---

1. देखिए टिप्पण "मीनिंग आफ 'डेट' इन बैंकरप्सी" (1949), 208 एल० टी० जर्नल 302।
2. राबोर्ग बनाम पेटन, 2 वीट, 385, 4 एल० संस्करण 268।
3. मेटर्न का कानून (ई० 1235)।
4. मिलर बनाम राबर्टसन (1924) यू० एस० 243, 248, 69 एल० एडिशन 265, 271।
5. कोक, इन्स्टीट्यूट्स, जिल्द 2, पृष्ठ 89 जो मिलर बनाम राबर्टसन 924) 69 एल० एडिशन 265, 271 में उद्धृत किया गया।
6. देखिए (क) टी० प्लकनेट रचित ए कन्साइज हिस्ट्री आफ कामन ला (1956) 367—369,
   (ख) होल्ड्सवर्थ रचित हिस्ट्री आफ इंगलिश ला, जिल्द 3, पृष्ठ 284—285।
7. प्लकनेट रचित, ए कन्साइज हिस्ट्री आफ कामन ला (1956) पृष्ठ 362 और 365।
8. पोलक और मेटलैंड रचित हिस्ट्री आफ इंगलिश ला, जिल्द 2, पृष्ठ 210।

5.6. ऋण के लिए रिट (लेख) जंगम वस्तुओं के अधिकार के लिए रिट है—किसी वचन के प्रवर्तन के लिए नहीं बल्कि उस वस्तु को पाने के लिए वाद है जिसके बारे में यह सोच लिया गया है कि वह वादी की है। रेस्टोरेशन (राजतंत्र की पुनर्स्थापना) के काल तक इसे सम्पत्ति का वाद कहा जाता था। जहां कोई वचन प्रवर्तनीय था वह बाध्यता के रूप में नहीं बल्कि अभिव्यक्त राशि के अनुदान के रूप में प्रवृत्त होता था[1]। एडगूम्ब **बनाम** डी०[2] वाले मामले में यह कहा गया था कि इस अर्थ में ऋण की संविदाएं "पारस्पारिक अनुदान" हैं।

5.7. बाद में, ऋण का वाद निष्पादित किए गए किसी भी प्रतिफल के लिए हो सकता था परन्तु शर्त यह थी कि धनराशि परिनिर्धारित हो। माल या भूमि के विक्रय की संविदा पर भी, माल के सौंपे जाने या भूमि का कब्जा दिए जाने के पूर्व, कीमत के लिए वाद लाया जा सकता है।

बहरहाल स्थिति यही बनी रही कि अनौपचारिक निष्पादन योग्य करारों पर साधारणतः किंग्स कोर्ट्स में कोई उपचार उपलब्ध नहीं था।[3]

संविदा का इतिहास।

5.8. इस प्रसंग में संविदा के इतिहास पर दृष्टि डालना उचित होगा। यह मत व्यक्त[4] किया गया कि संविदा के विकास को तीन स्तरों में बांटा जा सकता है जो विनिमय की आर्थिक और विधिक संस्थाओं[5] के इतिहास के तत्सम हैं। पहले स्तर में सभी विनिमय तात्कालिक होते हैं और इसलिए उसमें "संविदा" के उसके आंग्ल अमरीकी अर्थ में, तत्सम कुछ भी नहीं होता है। प्रत्येक पक्षकार एक नई चीज का स्वामी हो जाता है और उसके अधिकार किसी वचन पर नहीं बल्कि सम्पत्ति पर आधारित होते हैं।[6] दूसरे स्तर पर, "जब विनिमय अधूरा छोड़ दिया जाता है तब सर्वप्रथम उसका संविदाजन्य पहलू सामने आ जाता है जब वह अधूरा छोड़ दिया जाता है जिससे कि केवल एक पक्षकार पर बाध्यता बच रहती है"। "विकास क्रम में तीसरा और अंतिम स्तर उस समय आता है जब निष्पादन योग्य विनिमय प्रवर्तनीय हो जाता है।"

"ऋण" की रिट का विकास और विस्तार, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, मोटे तौर पर उसी आधार पर चल रहा है।

वस्तु रूप में संदेय ऋण।

5.9. अब हम फिर अधिनियम की चर्चा पर आ जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रश्न पर कुछ संविवाद है कि क्या **वस्तु रूप में संदेय** ऋण अधिनियम के अधीन ऋण है, मुम्बई उच्च न्यायलय का इस विषय पर मत संकीर्ण है[7] जब कि मद्रास वाला दृष्टिकोण व्यापक है[8]। सिद्धान्त रूप में ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता

1. 6 हार्वर्ड ला रिव्यू 399।
2. एडगूम्ब **बनाम** डी० (1670) वाऊ पृष्ठ 101 पर।
3. एमेस, "पैरोल कान्ट्रैक्ट्स प्रायर टु एसम्पसिट" 8 हार्वर्ड ला रिव्यू 252 जो एसेज इन एंगलो अमेरिकन लीगल हिस्ट्री, जिल्द 3, पृष्ठ 304 पर पुनर्मुद्रित है।
4. वार्टन हारविट्ज रचित "हिस्ट्री आफ कांट्रैक्ट" (मार्च 1974) 87 हार्वर्ड ला रिव्यू 917, 919।
5. देखिए :— (क) एल० फुलर और एम० ईजेनबर्ग रचित बेसिक कांट्रैक्ट ला (1972) पृष्ठ 121—122।
(ख) एफ० केसलर और जी० गिलमोर रचित कांट्रैक्ट्स (1970) पृष्ठ 27—28।
6. एल० फुलर और एम० ईजेनबर्ग रचित बेसिक कांट्रैक्ट ला (1972) पृष्ठ 121—122।
7. नारायण **बनाम** नागप्पा (1910) 12 बाम्बे ला रिपोर्टर 831।
8. गोविन्दन नायर **बनाम** चेरल (1913) आई० एल० आर० 38 मद्रास 464।

है कि वस्तु रूप में संदेय ऋणों को अपवर्जित कर दिया जाए। अतः हम सिफारिश करते हैं कि मद्रास वाला दृष्टिकोण अपनाते हुए उक्त प्रयोजन के लिए स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए।

"लिखत" का अर्थ।

5.10. अधिनियम की धारा 1 में "लिखत" शब्द के अंतर्गत, न्यायिक अर्थान्वयन के अनुसार डिक्री भी आती है[1]। इस विषय में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है।

"निश्चित राशि" का अर्थ।

5.11. धारा 1 के मुख्य पैरा में प्रयुक्त "निश्चित राशि" पद की ठीक-ठीक परिधि के बारे में काफी अनिश्चितता प्रतीत होती है। 1833 के तत्सम कानून (जो अब निरसित हो चुका है) से संबंधित इंगलैंड के निर्णयों में यह अधिकथित है कि यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि राशि किस प्रकार निश्चित होती है——राशि उस समय निश्चित हो जाती है जब वह लिखित लिखत के अधीन अभिनिश्चित कर दी जाती है[2]। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस पद के अन्तर्गत वह मामला नहीं आता है जिसमें राशि के संबंध में बाद में समायोजन किया जा सकता हो। राशि निश्चित होनी चाहिए जो पूर्ण और सभी दशा में एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को पूर्ण रूप से देय हो यद्यपि यथार्थ रूप में वह "ऋण" पद के अन्तर्गत नहीं आती है।[3]

हमारा यह मत है कि ये शब्द अनावश्यक हैं। "निश्चित राशि" के अन्तर्गत जो चीजें आएंगी वे सभी चीजें "ऋण" शब्द में (जिस अर्थ में हम उसे आजकल जानते हैं) आ जाएंगी। इसके अतिरिक्त हम नुकसानी पर ब्याज के लिए एक उपबंध जोड़े जाने की सिफारिश कर रहे हैं और इसलिए उन शब्दों से भ्रम हो सकता है। "ऋण" के अन्तर्गत निश्चित राशि नहीं आती है और यह बात स्पष्ट की जा सकती है।

सिफारिश।

5.12. हम इस बात पर विचार कर चुके हैं कि अधिनियम में "ऋण" शब्द का क्या अर्थ होना चाहिए। हमारा मत है कि यह उपबंध करना उपयोगी होगा कि "ऋण" से अभिनिश्चित धनराशि का दायित्व अभिप्रेत है तथा "निश्चित राशि" शब्द निकाल दिए जाने चाहिएं। यही हमारी सिफारिश भी है।

मृत्यु या वैयक्तिक क्षति के लिए नुकसानी पर ब्याज।

5.13. वर्तमान धारा के अधीन किसी रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत करना विवेक पर निर्भर करता है। साधारणतः हम इस योजना को नुकसानी के जोड़े जाने के बाद भी बदलने का विचार नहीं करते हैं। किन्तु जहां नुकसानी मृत्यु या वैयक्तिक क्षति के लिए अधिनिर्णीत की गई है वहां जब तक कि उसके प्रतिकूल विशेष कारण न हों, धारा 1 के अधीन ब्याज दिया जाना चाहिए। ऐसा एक उपबंध हाल ही में इंगलैंड में किया गया है[4] और हम सिफारिश करते हैं चूंकि यह एक अच्छा उपबंध है इस लिए इसे हमारे देश में भी स्थान मिलना चाहिए।

ब्याज पर ब्याज का प्रतिषिद्ध किया जाना।

5.14. ब्याज पर ब्याज नहीं होना चाहिए। हमारी यह सिफारिश है कि यह उपबंध अभिव्यक्त रूप से किया जाना चाहिए।

---

1. सावित्री बाई बनाम राधाकिशन, ए० आई० आर० 1938 नागपुर 49 (भरण-पोषण का भार सृजित करने वाली डिक्री)।
2. (क) कोक बनाम रोस 44 एल० जे० सी० पी० 315;
   (ख) हिल बनाम दक्षिण स्टाफोर्डशायर रेलवे एल० आर० 18 इक्विटी 154;
   (ग) वार्ड बनाम अयर 49, एल० जे० चांसरी 659 (जेसल एम० आर०)।
3. लंदन चैथम एण्ड डोवल रेलवे बनाम साउथ ईस्टर्न रेलवे (1893) ए० सी० 429 (एच० एल०)।
4. ला रिफार्म आदि अधिनियम, 1934 की धारा 3(1ए) जो एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ऐक्ट, 1969 (सी० 58) की धारा 22 द्वारा अंतः स्थापित की गई।

अध्याय 6

ब्याज की दर और उसके आरंभ होने की तारीख

अध्याय की परिधि ।

6.1. इस अध्याय में हम ब्याज की दर[1] की और ब्याज लगना आरम्भ होने की तारीख[2] के विषय में विचार करेंगे।

ब्याज की दर।

6.2. जहां तक ब्याज की दर का संबंध है, अनेक विकल्प संभव हैं। दर, कानून द्वारा नियत की जा सकती है अथवा कानून द्वारा अधिकतम दर नियत की जा सकती है किन्तु उस अधिकतम के अन्दर, न्यायालय को विवेकाधिकार दिया जा सकता है। अथवा दर का उल्लेख चालू दर के रूप में किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि धारा 1[3] के अधीन, ब्याज की दर, दरअसल, न्यायालय के विवेक पर निर्भर है किन्तु शर्त यह है कि वह चालू दर से अधिक न हो। हमारा मत है कि दर का प्रश्न न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए जिससे कि वह प्रत्येक मामले के संबंध में उसकी परिस्थितियों के अनुसार कार्यवाही और यथोचित न्याय कर सके। ऊपर जो कुछ कहा गया है उसको दृष्टि में रखते हुए हम इस संबंध में किसी परिवर्तन की सिफारिश नहीं करते हैं।

ब्याज की भिन्न दर का आदेश देने के बारे में इंगलैंड के ऐक्ट में (1969 में यथा संशोधित) उपबंध।

6.3. अब हम दूसरी बात को लेते हैं जो ब्याज की दर से सुसंगत है। इंगलैंड में 1934 के ऐक्ट की धारा 3 में निम्नलिखित उपबंध[4] अभी हाल ही में जोड़ा गया है, अर्थात् :—

> "(1 बी) इस धारा[5] के अधीन किसी आदेश में यह उपबंध किया जा सकता है कि उस अवधि के जिसके लिए ब्याज दिया गया है, भिन्न भागों की बाबत भिन्न-भिन्न दरों से ब्याज का परिकलन किया जाएगा चाहे वह अवधि इस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित सम्पूर्ण अवधि है या उसका भाग है।"

हमने इसी प्रकार का उपबंध करने की बात पर विचार किया है किन्तु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह आवश्यक नहीं है। यह कहा जा सकता है कि यह विवेक धारा 1 में काम में लगाए गए सूत्र में गर्भित है और किसी अभिव्यक्त उपबंध की आवश्यकता नहीं है।

ब्याज लगना प्रारम्भ होने की तारीख।

6.4. जहां तक ब्याज लगना प्रारंभ होने की तारीख का संबंध है, विद्यमान विधि का सार यह है कि ब्याज उस समय से जब किसी लिखित लिखत के आधार पर ऋण या निश्चित राशि संदेय होती है अथवा यदि ऋण या निश्चित राशि किसी "अन्य रूप में" संदेय है तो लिखित मांग में उल्लिखित समय से संदेय है। "अन्य रूप में" शब्दों का न्यायालयों ने अर्थान्वयन किया है[6]। यह अभिनिर्धारित किया गया है[7] कि जहां मूलधन किसी निश्चित समय पर संदेय नहीं है वहां ऐसे मूलधन पर ब्याज, धारा में निर्दिष्ट लिखित मांग की तारीख से संदेय है।

ब्याज आरंभ होने का समय बिन्दु।

6.5. धारा के इस भाग पर विचार करने की आवश्यकता है। वर्तमान धारा के अधीन स्थिति, जो हम ऊपर बता चुके हैं,[8] यह है कि—

---

1. आगामी पैरा 6.2 और 6.3।
2. आगामी पैरा 6.4।
3. वर्तमान धारा 1।
4. धारा 22, एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस (सी० 58)।
5. 1934 के ऐक्ट के लिए, पूर्वगामी पैरा 5.2 देखिए।
6. जिस रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सकता है उसके बारे में चर्चा भी देखिए।
7. प्राविन्स आफ वेस्ट बंगाल **बनाम** बसंत प्रापर्टीज, ए० आई० आर० 1966, कलकत्ता 36।
8. पूर्वगामी पैरा 6.4।

(क) किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय ऋण या निश्चित राशि के मामले में, ब्याज उस तारीख से लग सकता जिस तारीख को वह ऋण या निश्चित राशि संदेय है ;

(ख) अन्य मामलों में, ब्याज की मांग की सूचना में उल्लिखित तारीख से ब्याज लग सकता है।

पहले प्रकार के मामले से कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है। दूसरे प्रकार के मामले पर विचार करना आवश्यक है।

यह उल्लेखनीय है कि इंगलैंड के ऐक्ट में वाद हेतुक की तारीख को सभी मामलों में ब्याज लगने के लिये संभव तारीख के रूप में मान लिया गया है[1]।

मांग की सूचना को (ब्याज) आरंभ होने का समय-बिन्दु नियत करने की कसौटी मान कर अधिमान देना।

6.6. हम इस विषय के सभी पहलुओं पर और विशेष रूप से हम इस प्रश्न पर विचार कर चुके हैं कि क्या वाद हेतुक को (ब्याज) आरंभ होने का समय-बिन्दु मान लिया जाना चाहिए, जैसा कि इंगलैंड में है[2]। ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय ऋण के मामले को छोड़कर, ब्याज की लिखित मांग की सूचना निर्णायक होनी चाहिए, जैसा कि अभी है। जहां किसी रकम के संदाय के लिए लिखित रूप में तारीख नियत नहीं है[3] वहां न्याय यह अपेक्षा करता है कि उस व्यक्ति को जो (चाहे ऋण में या नुकसानी में) किसी धनीय बाध्यता का पालन करने में असफल रहा है, धारा 1 के मुख्य पैरा के अंतर्गत आने वाले मामलों में लेनदार या नुकसानी के हकदार द्वारा ब्याज का दावा करने के आशय की सूचना दी जानी चाहिए जिससे कि दायी व्यक्ति उस बातचीत को जो वह करता या मामले के तथ्यों की जांच या विधिक विचार-विमर्श को बन्द कर दे और यदि चाहे तो मूलधन का संदाय कर दे। मांग की सूचना से दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं, अर्थात् :—

(क) मूलधन के लिए दावे पर पुनः बल देना, और

(ख) ब्याज के लिए दावेदार की इच्छा को अधिसूचित करना,

इसके अतिरिक्त मांग की सूचना देने में एक व्यवहारिक फायदा है। उसके कारण संविदा भंग की तारीख या अपकृत्य किए जाने की तारीख के बारे में उस दशा में विवाद बचता है जिसमें, मूलधन के लिए दावे का संबंध संविदा-भंग या अपकृत्य से है। उक्त सूचना का आशय इन घटनाओं के लिए एक विशिष्ट समय-बिन्दु निर्धारित करना है। ऐसे मामलों में जिसमें वाद हेतुक किसी निश्चित कार्य की बजाए किसी लोप या असफलता पर आधारित है, इस पहलू का विशेष महत्व हो जाता है क्योंकि लोप या असलफता के समय-बिन्दु को निर्धारित करना अक्सर कठिन होता है। अतः निश्चित तारीख रखने में स्पष्ट सुविधा है।

धारा 1—मुख्य पैरा का संशोधन करने की सिफारिश।

6.7. हमने ऊपर जो कुछ कहा है वह सार रूप में, वर्तमान धारा के अनुरूप है और इसलिए धारा 1 के मुख्य पैरा में, ब्याज का लगना मांग की सूचना में उल्लिखित तारीख से आरम्भ होगा सिवाय उस दशा के जिसमें रकम लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय है।

---

1. ला रिफार्म (मिसलेनियस प्राविजन्स) ऐक्ट, 1964 की धारा 3।
2. पूर्वगामी पैरा 6.4
3. लिखित होने की अपेक्षा से संदाय की तारीख के निश्चित होने में मदद मिलती है।

धारा 1, परन्तुक—विधि द्वारा इस समय संदेय ब्याज

धारा 1, परन्तुक।

7.1. अभी तक हमने अधिनियम की धारा 1 के मुख्य पैरा से संबंधित पाठ और निर्णय विधि पर विचार किया है। अब हम उन मामलों पर विचार करेंगे जो अभी मुख्य पैरा के बाहर हैं। इस प्रयोजन के लिए धारा 1 का परन्तुक महत्वपूर्ण है। वह परन्तुक इस प्रकार है:

"परन्तु उन सभी मामलों में जिनमें ब्याज विधि द्वारा इस समय संदेय है, ब्याज संदेय होगा।"

यह अस्पष्ट उपबंध जिसमें केवल उन मामलों के प्रति निर्देश किया गया है जिनमें ब्याज "विधि द्वारा इस समय संदेय है"। इस उपबन्ध को तब तक लागू नहीं किया जा सकता है जब तक कि कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अन्वेषण करके यह पता न लगाए कि किन मामलों में ब्याज "विधि द्वारा इस समय संदेय है"। अतः यह वांछनीय होगा कि धारा में कम से कम उन महत्वपूर्ण मामलों को स्पष्ट रूप से सम्मिलित कर लिया जाए जिनमें ब्याज "विधि द्वारा इस समय संदेय है"। अनुभव से पता चलता है कि जब यह प्रश्न उठता है तब पर्याप्त विधिक गवेषण करनी होती है जिसके परिणामस्वरूप काफी धन और समय का अपव्यय होता है। परन्तुक से संबंधित अनेक प्रकाशित निर्णयों पर उच्चतम न्यायालय में विचार हुआ है और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि ऐसे निर्णयों की संख्या बहुत नहीं है, उनमें कम से कम कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों में निर्धारित प्रस्थापनाओं को संहिताबद्ध करना उपयोगी होगा।

साम्यापूर्ण विचार।

7.2. मोटे तौर पर, न्यायालयों ने निर्णीत मामलों में, धारा 1 के परन्तुक का आश्रय लेकर, उन मामलों में ब्याज अधिनिर्णीत किया है जिनमें साम्या की दृष्टि से ऐसा अपेक्षित था। उदाहरण के लिए, जहां स्थावर सम्पत्ति क्रय या अर्जित की जाती है और (यथास्थिति) उसकी कीमत या उसके प्रतिकर का संदाय अभी नहीं किया गया है, वहां न्यायालय ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए तैयार रहता है। जिन मामलों में वैश्वासिक नातेदारी होती है उनमें भी यही स्थिति होती है।

परन्तुक की परिधि और उनका उद्देश्य।

7.3. उच्चतम न्यायालय ने धारा 1 के परन्तुक में आने वाले "उन सभी मामलों में जिनमें ब्याज विधि द्वारा इस समय संदेय है, ब्याज संदेय होगा" शब्दों के हवाले से यह मत व्यक्त[1] किया है कि परन्तुक उन मामलों को लागू होता जिनमें ईक्विटी न्यायालय (कोर्ट्स आफ ईक्विटी) ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।

परन्तुक का उद्देश्य।

परन्तुक के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए प्रिवी कांउसिल ने कहा है[2] कि वह (परन्तुक) उन मामलों को लागू होता है जिनमें ईक्विटी न्यायालय ब्याज अधिनिर्णीत करने की अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।

विधिगत महत्व

7.4. अतः यह परन्तुक पर्याप्त विधिगत रुचि का विषय है। दि नार्थम्ब्रिया[3] में सर राबर्ट फिलीमोर ने सिद्धान्त स्पष्ट रूप से बताया है। इस प्रस्थापना के विषय के कि नुकसानी अधिनिर्णीत करने का अधिकार केवल सिविल प्रोसीजर ऐक्ट, 1833 की धारा 28 और 29 पर आधारित है और यह कि नावधिकरण (एडमिरैल्टी) विषयक परिपाटी गलत है क्योंकि वह कानून के पारित होने के पूर्व और उसके बाद दोनों ही अवस्था में कामन ला से भिन्न है, समर्थन में उद्धृत प्रामाणिक निर्णयों में प्रभेद करते हुए सर राबर्ट फिलीमोर ने कहा कि—

1. महावीर प्रसाद बनाम दुर्गादत्त (1961), 3एस० सी० आर० 639; ए० आई० आर० 1961 एस० सी० 990।

2. बी० एन० रेलवे कम्पनी बनाम पातनजी राऊजी, ए० आई० आर० 1938 पी० सी० 65, 67, 79।

3. दि नार्थम्ब्रिया, (1869) एल० आर० 3 ए० एण्ड ई० 6, 10 जिसका हवाला दि बरविकशायर (1950) 1 आल० ई० रि० 699, 702, में दिया गया।

"किन्तु मुझे इन प्रामाणिक निर्णयों के उत्तर के रूप में यह कहना पर्याप्त प्रतीत होता है कि एडमिरैल्टी ने, **साम्यपूर्ण अधिकारिता का प्रयोग करने में,**[1] उस सिद्धान्त से भिन्न सिद्धान्त के आधार पर कार्य किया है, जिस पर कामन ला के प्रामाणिक निर्णय आधारित प्रतीत होते हैं। एडमिरैल्टी कोर्ट (नावधिकरण न्यायालय) ने जो सिद्धान्त अपनाया है वह सिविल विधि का यह सिद्धान्त है कि जब संदाय बाध्यताधारी की रूढ़ि या प्रथा के अनुसार किया गया है तब बाध्यताकारी को ब्याज सदैव देय होता है, चाहे वह बाध्यता संविदा से या किसी दोषपूर्ण कार्य से उत्पन्न हुई हो।"।

7.5. यही दृष्टिकोण नागपुर के एक मामले[2] में प्रकट होता है जिसमें यह कहा गया था कि :—

"हमारी राय है कि भरण-पोषण के मामलों में जिनमें डिक्री द्वारा भार सृजित हुआ है, हम साम्यापूर्ण शक्तियों का प्रयोग करते हैं।"।

इंगलैंड की विधि—कपट और अन्य साम्यापूर्ण बातें।

7.6. अतः ऐसे महत्वपूर्ण मामले जिनमें ब्याज साम्या के नियमों के अनुसार संदेय होता है निम्नलिखित हैं[3], अर्थात् :—

(1) वह धन जो कपट द्वारा प्राप्त किया गया है या कपट द्वारा प्रतिधारित है, ब्याज सहित वसूल किया जा सकता है[4,5]।

(2) कुछ ऐसे मामलों में जिनमें लेनदार और ऋणी के बीच विशिष्ट नातेदारी विद्यमान है, जैसे कि बंधककर्ता और बंधकदार, किसी बंधकपत्र पर बाध्यताधारी और बाध्यताकारी, निष्पादक और हिताधिकारी, मालिक और उप-अभिकर्ता, मूल ऋणी और प्रतिभू, न्यासी और न्यासलाभी तथा विक्रेता और क्रेता, ब्याज साम्या के आधार पर भी वसूल किया जा सकता है।

वार्षिकियों की बकाया पर ब्याज वहां वसूल किया जा सकता है जहां भुगतान करने में अवचार या अनुचित विलम्ब हुआ है।

(3) उन धनीय वसीयत-सम्पदाओं पर ब्याज अनुज्ञेय है जिनका भुगतान एक निश्चित समय के भीतर नहीं कर दिया जाता है[6]।

जहां तक वार्षिकियों का संबंध है, स्थिति इस प्रकार है :—[7]

"न्यायालय का साधारण नियम यह है कि वार्षिकी की बकाया रकम पर ब्याज नहीं लगता है। पुराने मामलों में जिनमें वार्षिकी किसी पत्नी या बच्चे के लिए व्यवस्था होती थी, वार्षिकी धारक के पक्ष में कभी-कभी अपवाद किया जाता था। लार्ड हार्डविक ने न्यूमैन **बनाम** आउलिंग[8] वाले मामले में इसी सिद्धान्त का अनुसरण किया था। किन्तु

1. बल देने के लिए अधोरेखांकन किया गया।

2. सीताराम **बनाम** वामुराव ए० आई० आर० 1948 नागपुर, 49, 50 पैरा 6।

3. हाल्सबरी, तीसरा संस्करण, जिल्द 27, पृष्ठ 9 और 10, पैरा 9।

4. जानसन **बनाम** एन० (1904) ए० सी० 817, 822 (पी० सी०) लार्ड मैक्नाटेन) (आगामी पैरा 7.9क भी देखिए)।

5. कपट पर भारतीय मामलों के लिए परिशिष्ट देखिए।

6. हाल्सबरी, तीसरा संस्करण, जिल्द 16 (एक्जीक्यूटर्स) पृष्ठ 327, 328, 379 380।

7. टोरे **बनाम** ब्राउन (1855) 5 एच० एल० सी० 555, 578।

8. न्यूमैन **बनाम** आर्डलिंग 3 एट किन्सन 579।

फ्यू बनाम लार्ड विन्टरटेन[1] वाले मामले में लार्ड थरलो ने अपने विनिश्चय के आधार के रूप में इस सिद्धान्त का खण्डन किया था और मैं समझता हूं कि विधि के बारे में उनके मत को अब उचित और संतोषप्रद माना जाता है।

बाद में जिन मामलों में अभिव्यक्त संविदा न होने पर न्यायालय ने ब्याज अनुज्ञात किया है, वे ऐसे मामलों तक सीमित रहे हैं जिनमें वार्षिकी धारक के पास कोई वैध प्रतिभूति रही है जो, न्यायालय का हस्तक्षेप न होता तो उसने ब्याज पाने के लिए उपलब्ध कर दी होती अथवा जिनमें बकाया उस पक्षकार के अवचार के कारण जमा हो गया है जो भुगतान करने के लिए बाध्य है। इस मामले में संविदा का प्रश्न नहीं उठता और चूंकि वार्षिकी धारक के पास निश्चय ही कोई वैध प्रतिभूति नहीं थी इसलिए प्रश्न केवल यह है कि क्या बकाया रकम का बड़ा जमाव इस कारण हुआ कहा जा सकता है कि भारित सम्पत्ति के स्वामियों ने अवचार किया है। यह सोच कर बहुत दुख होता है कि इस सम्पदा में हितबद्ध पक्षकारों के अधिकार कितने अधिक समय तक बिना तय हुए पड़े रहे हैं। किन्तु तथ्यों पर सर्वोत्तम रूप से विचार करने पर मैं उन लोगों की बजाय जिन्हें वार्षिकियां प्राप्त होती थीं उन लोगों को विलम्ब के लिए दोषी ठहराने में असमर्थ हूं जिन्हें वार्षिकियों का भुगतान करना था।"।

जिन मामलों पर विचार किया गया है उनके गिनाने का प्रश्न।

7.7. मूल प्रश्न, जिस पर विचार करना है, यह है कि यदि किन्हीं मामलों में साम्या सृजित करने वाली विशेष परिस्थितियां विद्यमान हैं तो क्या वहां अभी भी प्रत्येक मामले में प्रयोग किए जाने वाले विवेक के स्तर पर विषय के संबंध में कार्यवाही करना आवश्यक है अथवा क्या बल दूसरी ओर नहीं दिया जाना चाहिए अर्थात् जहां कोई धनीय दावा **किन्हीं विशेष** परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ है, वहां जब तक कि तत्प्रतिकूल विशेष कारण न हो, ब्याज प्रथमदृष्ट्या, दावा योग्य नहीं होना चाहिए।

विशेष परिस्थितियों के लिए उपबंध की आवश्यकता।

7.8. विषय के इस पहलू पर ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि परंतुक द्वारा परिरक्षित शक्ति की व्यापकता पर आंच लाये बिना कुछ विशिष्ट स्थितियों के लिए उपबंध करना न्यायपूर्ण और उचित होगा। तदनुसार कुछ महत्वपूर्ण स्थितियों के संबंध में आगे विचार किया गया है।

निक्षेप।

7.9. प्रतिभूति निक्षेपों की दशा में अभी स्थिति यह है कि यदि ब्याज की मांग नहीं की जाती है तो ब्याज वसूल नहीं किया जा सकता[2]। हमारा यह मत है कि इस संबंध में जो स्थिति है उसमें परिवर्तन किया जाना चाहिए। आजकल निक्षेप अक्सर संविदाजन्य या कानूनी बाध्यताओं के पालन के लिए किए जाते हैं और यह उचित ही है कि ऐसे निक्षेपों पर निक्षेप की तारीख से ब्याज अनुज्ञात होना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक स्पष्ट कानूनी उपबंध किया जाना चाहिए। इस विषय पर विनिर्दिष्ट उपबंध वांछनीय है।

वैश्वासिक नातेदारी।

7.10. जहां वैश्वासिक नातेदारी है वहां विनिर्दिष्ट उपबंध द्वारा ब्याज अनुज्ञात किया जाना चाहिए।

कपट

7.11. ऐसे मामलों में भी ब्याज विनिर्दिष्ट उपबंध द्वारा संदेय होना चाहिए जिनमें धन कपट द्वारा प्राप्त किया गया या प्रतिधारित है[3]। वस्तुतः निर्णयज विधि के अधीन

---

1. फ्यू **बनाम** लार्ड विन्टरटेन 1 वेसी जूनियर 451।
2. शेख महताब **बनाम** धर्मसाई ए० आई० आर० 1944 नागपुर 330, 332, 333।
3. देखिए इंगलैंड की विधि जिसका संक्षिप्त वर्णन जो पूर्वगामी पैरा 7.3 में किया गया है।

वर्तमान स्थिति यही है उदाहरण के लिए ट्रोजन एण्ड कम्पनी **बनाम** नागप्पा चेटियार[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :—

"हम समझते हैं कि यह बात अब अच्छी तरह तय हो चुकी है कि ऐसे मामले में जिसमें धन कपट द्वारा प्राप्त किया गया या प्रतिधारित है, इक्विटी (साम्या) न्यायालय द्वारा ब्याज अनुज्ञात किया जाता है। जैसा कि हाल्सबरी की जिल्द 1 के अनुच्छेद 423 में लिखा है, अभिकर्ता को भी अपने अभिकरण के दौरान कपट के सभी मामलों और उसको प्राप्त सभी रिश्वत और गुप्त लाभों पर ब्याज का भुगतान करना चाहिए।"।

उच्चतम न्यायालय ने जानसन **बनाम** रैक्स वाले मामले में प्रिवी काउंसेल के निर्णय का अनुमोदन करते हुए उसका हवाला दिया। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था[2] :—

"इस उद्देश्य से कि माननीय न्यायाधीशों के विचारों के संबंध में सम्भवतः कोई गल्तफहमी न हो यह बता देना आवश्यक है कि वे यह कहना चाहते थे कि उनकी राय में इस बारे में कोई भी संदेह नहीं हो सकता है कि कपट द्वारा प्राप्त किया गया धन और कपट द्वारा प्रतिधारित धन ब्याज सहित वसूल किया जा सकता है चाहे कार्यवाही इक्विटी न्यायालय ने या न्यायालय ने अथवा ऐसे किसी न्यायालय में जिसके पास साम्या और विधि दोनों ही से संबंधित अधिकारिता हो, की जाए।"

इस विषय पर एक अभिव्यक्त उपबंध अंतःस्थापित करना उपयोगी होगा।

मेहर या भरण-पोषण।

7.12. यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां मेहर[3] के लिए या भरण-पोषण के लिए[4] किसी दावे की डिक्री की गई है वहां न्यायालय अपने विवेकानुसार उस रकम पर उसके वसूल होने की तारीख तक के लिए ब्याज अधिनिर्णीत कर सकता है। हम समझते हैं कि ऐसे मामलों में भी ब्याज के लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही उन महत्वपूर्ण स्थितियों का विवेचन समाप्त होता है जो परन्तुक के अन्तर्गत आती हैं और जिनके संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से कार्यवाही की जानी चाहिए। अब हम कुछ अन्य स्थितियों का विवेचन करेंगे।

प्रतिकर के संदाय में विलम्ब।

7.13. यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जीवन बीमा निगम अधिनियम, 1956 की धारा 16 के अधीन बीमाकर्ता को प्रतिकर के संदाय के विलम्ब के बारे में बीमाकर्ता ब्याज का हकदार है[5]। यह अपने ढंग का एक अकेला मामला है। इसलिए इस स्थिति के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट कार्यवाही आवश्यक नहीं है।

भाटक (किराए) पर ब्याज।

7.14. अभिधारी द्वारा अपने भूस्वामी को संदेय भाटक पर ब्याज का प्रश्न अनेक बार न्यायालयों के सामने आया है और इस संबंध में यह प्रतीत होता है कि वर्तमान

---

1. ट्रोजन एण्ड कम्पनी **बनाम** नागप्पा चेटियार ए० आई० आर० 1953 एस० सी० 235, 240।
2. जानसन **बनाम** रैक्स (1904) ए० सी० 817 (पी० सी०)।
3. मुसम्मात मैनूना बेगम **बनाम** शराफतुल्ला ए० आई० आर० 1931 इलाहाबाद 403 (खण्ड पीठ)।
4. (क) श्री नाथजी **बनाम** मुसम्मात पन्ना कंवर ए० आई० आर० 1935 इलाहाबाद 239 (खण्ड पीठ)।
   (ख) सरस्वती कुंवर **बनाम** शैरारत्न कुंवर ए० आई० आर० 1934 पटना 99 (खंड पीठ)।
5. नेशनल इन्शयोरेन्स कम्पनी **बनाम** लाइफ इन्शयोरेंस कार्पोरेशन ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1171।

मत यह है कि यदि मामला ब्याज अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता है तो ऐसा दावा मंजूर नहीं किया जा सकता[1]। इस मुद्दे पर कोई संशोधन आवश्यक नहीं है।

अन्य मामले।

7.15. साम्या की दृष्टि से कुछ अन्य मामलों में भी ब्याज वसूल किया जा सकता है। उदाहरणार्थ जहां लेनदार और ऋणी के बीच कोई विशिष्ट नातेदारी मौजूद हो जैसे कि बंधककर्ता और बंधकदार, बंध-पत्र पर बाध्यताधारी और बाध्यताकारी, निष्पादक और हिताधिकारी, मालिक और अभिकर्ता, मालिक और प्रतिभू, न्यासी और न्यासलाभी और विक्रेता और क्रेता, अथवा वार्षिकियों की बकाया रकम के बारे में। ऐसे मामलों के लिए विनिर्दिष्ट उपबंध द्वारा व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है। धारा 1 के परन्तुक के साधारण उपबंध के अन्तर्गत ये मामले आ जाएंगे।

कुछ मामलों में ब्याज के अधिकार को जोड़ने की सिफारिश।

7.16. हमने ऊपर ऐसी स्थितियां गिनाई हैं जिनमें ब्याज अधिकार का विषय होना चाहिए और वह भी इस अर्थ में कि जब तक कि तत्प्रतिकूल कारण न हो वह अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए। आगे चलकर हम यह बताएंगे कि इस संबंध में ठीक-ठीक संशोधन क्या किया जाना चाहिए[2]। संक्षेप में उक्त स्थितियां निम्नलिखित हैं, अर्थात्:—

(क) जहां विधि या संविदा द्वारा अधिरोपित किसी बाध्यता के पालन के लिए प्रतिभूति के बारे में धन या कोई अन्य संपत्ति निक्षिप्त की गई है, वहां निक्षेप की तारीख से;

(ख) जहां धन का संदाय करने या किसी सम्पत्ति का प्रत्यावर्तन करने की बाध्यता किसी वैश्वासिक नातेदारी के आधार पर उत्पन्न होती है वहां वाद हेतुक की तारीख से;

(ग) जहां धन या अन्य सम्पत्ति कपट द्वारा प्राप्त की गई या प्रतिधारित है वहां वाद हेतुक की तारीख से;

(घ) जहां दावा मेहर या भरण-पोषण के लिए है वहां वाद हेतुक की तारीख से।

शाब्दिक परिवर्तन।

7.17. इसके साथ ही परन्तुक के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत करने की शक्ति के बारे में महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार समाप्त होता है। अब हम "विधि द्वारा इस समय संदाय" से उत्पन्न होने वाले एक शाब्दिक मुद्दे की चर्चा करेंगे। हमारा मत है कि परन्तुक से "इस समय" शब्द निकाल दिया जाना चाहिए। ये शब्द भ्रामक हैं और प्रारूपण की दृष्टि से सही नहीं हैं। इसलिए हम इनके निकाल दिए जाने की सिफारिश करते हैं।

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि परन्तुक के इस भाग में "विधि" शब्द के स्थान पर "अधिनियमिति या विधि का अन्य नियम अथवा विधि का बल रखने वाली प्रथा" शब्द रखे जाने चाहिए।

अध्याय 8

सिफारिशों का सारांश

सारांश।

8.1. हम अधिनियम के संबंध में अपना विवेचन पूरा कर चुके हैं। इस रिपोर्ट के विभिन्न अध्यायों में हमने जो सिफारिशें की हैं उनका सारांश नीचे दिया जा रहा है।

---

1. गोफाल बनाम एन० रामास्वामी ए० आई० आर० 1970 मद्रास 417, 418, 419 पैरा 4.5 (जिसमें मद्रास के मामलों का पुनर्विलोकन किया गया है)।

2. आगामी पैरा 8.1 देखिए।

(1) अधिनियम की उद्देशिका को निकाल दिया जाना चाहिए[1] ।

(2) अधिनियम का क्षेत्रीय विस्तार और अधिक व्यापक बनाया जाना चाहिए जिससे कि जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत इसके अंतर्गत आ जाए[2] ।

(3) अधिनियम का नया प्रारूप इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि यह सुनिश्चित हो सके कि वह सिविल वादों से भिन्न कार्यवाहियों को भी लागू हो जाए[3] ।

(4) यदि अन्य शर्तें पूरी होती हैं तो अधिनियम के अधीन ब्याज का दावा करने से पूर्व लिखित लिखत[4] आवश्यक नहीं होनी चाहिए ।

(5) यह स्पष्ट करने के लिए कि अधिनियम उस स्थिति में भी लागू होता है जिसमें केवल ब्याज के लिए वाद दायर किया गया है[5] अधिनियम का पुन: प्रारूपण किया जाना चाहिए ।

(6) अधिनियम;—

(क) उन मामलों को जिसमें ब्याज का अधिकार विधि या संविदा द्वारा अलग से प्रवृत्त है, या

(ख) विनियम-पत्र[6], वचनपत्र या चैक के अनादरण पर ब्याज,

को लागू नहीं होना चाहिए ।

(7) जहां किसी अभिव्यक्त करार द्वारा ब्याज प्रतिषिद्ध है वहां अधिनियम लागू नहीं होना चाहिए[7] ।

(8) अधिनियम के अधीन नुकसानी पर ब्याज अधिनिर्णीत किया जा सके[8] ।

(8क) "ऋण" की परिभाषा अभिनिश्चित धन राशि होनी चाहिए[9] ।

(9) यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि वस्तु रूप में संदेय ऋण भी अधिनियम के अंतर्गत आते हैं[10] ।

(10) "निश्चित राशि" शब्द काट दिए जाने चाहिएं[11] ।

(11) मृत्यु या वैयक्तिक क्षति के लिए नुकसानी के वास्ते ब्याज का अधिनिर्णय आज्ञापक होना चाहिए, जब तक कि उसके प्रतिकूल कारण न हो[12] ।

(12) मेहर या भरण-पोषण के दावों पर ब्याज के लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना चाहिए[13] ।

(13) विधि या संविदा द्वारा अपेक्षित निक्षेपों पर ब्याज के लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना चाहिए[14] ।

---

1. पूर्वगामी पैरा 2ख ।
2. पूर्वगामी पैरा 3.5 ।
3. पूर्वगामी पैरा 4.4 ।
4. पूर्वगामी पैरा 4.6 ।
5. पूर्वगामी पैरा 4.21 और 4.22 ।
6. पूर्वगामी पैरा 4.22 ।
7. पूर्वगामी पैरा 4.23 ।
8. पूर्वगामी पैरा 5.2 ।
9. पूर्वगामी पैरा 5.2क ।
10. पूर्वगामी पैरा 5.9 ।
11. पूर्वगामी पैरा 5.12 ।
12. पूर्वगामी 5.13 ।
13. पूर्वगामी पैरा 7.12 ।
14. पूर्वगामी पैरा 7.9 ।

(14) कपट द्वारा प्राप्त या प्रतिधारित धन या सम्पत्ति पर ब्याज के लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना चाहिए[1]।

(15) जिन मामलों में कोई वैश्वासिक नातेदारी है उनके लिए विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया जाना चाहिए[2]।

अध्याय 9

संशोधन जिनकी सिफारिश की गई है

विस्तार खण्ड के बारे में सिफारिश।

9.1. ऊपर जो विवेचन किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए हम सिफारिश करते हैं कि ब्याज अधिनियम, 1839 में अधिनियम के क्षेत्रीय विस्तार के बारे में एक उपबंध[3] निम्नलिखित रूप में अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए। इसे धारा 1 के रूप में संख्यांकित करना होगा और वर्तमान धारा 1 को धारा 2 के रूप में पुनःसंख्यांकित[4] किया जाना चाहिए।

"1. इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है।"

सिफारिश।

9.1क. अधिनियम की उद्देशिका निकाल दी जानी चाहिए[5]।

धारा 1 के बारे में सिफारिश।

9.2. धारा 1 के स्थान पर निम्नलिखित धाराएं रखी जानी चाहिएं, अर्थात् :—

वर्तमान धारा 1 मुख्य पैरा 1

"2(1) **किसी ऋण या नुकसानी की वसूली के लिए किसी कार्यवाही में** या **किसी ऐसी कार्यवाही में जिसमें किसी ऋण** या नुकसानी की बाबत जिसका संदाय किया जा चुका है, ब्याज के लिए दावा, न्यायालय, ठीक समझे तो, यथास्थिति, ऋण या नुकसानी के हकदार व्यक्ति को अथवा ऐसा दावा करने वाले व्यक्ति को निम्नलिखित सम्पूर्ण अवधि या उसके भाग के लिए उस दर[6] से ब्याज अनुज्ञात कर सकेगा, अर्थात् :—

(क) यदि कार्यवाही किसी लिखित लिखत के आधार पर किसी निश्चित समय पर संदेय ऋण के संबंध में है तो उस तारीख से जब ऋण संदेय है, कार्यवाही के संस्थित किए जाने की तारीख तक :

(नया)

परन्तु जहां ऋण या नुकसानी की रकम का प्रतिसंदाय कार्यवाही संस्थित किए जाने के पूर्व कर दिया गया है वहां ऐसे प्रतिसंदाय के पश्चात् की अवधि के लिए इस धारा के अधीन ब्याज, अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।"

(नया)

(2) जहां ऐसी किसी कार्यवाही में जिसका उल्लेख उपधारा (1) में किया गया है :—

(क) निर्णय या आदेश ऐसी धनराशि के लिए दिया गया है जो नुकसानी पर ब्याज के अलावा, चार हजार रुपए से अधिक की है, और

(ख) वह राशि वादी या किसी अन्य व्यक्ति को हुई वैयक्तिक क्षति की बाबत या किसी व्यक्ति की मृत्यु की बाबत नुकसानी है या ऐसी नुकसानी उसके अन्तर्गत है,

---

1. पूर्वगामी पैरा 7.10।
2. पूर्वगामी पैरा 7.8।
3. पूर्वगामी पैरा 3.4।
4. पूर्वगामी पैरा 8.2।
5. पूर्वगामी पैरा 2क.1।
6. दर के लिए वैकल्पिक प्रारूप—"ऐसी दर से जो न्यायालय ठीक समझे"।

वहां जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता है कि इस बात के विशेष कारण हैं कि उस नुकसानी की बाबत ब्याज नहीं दिया जाना चाहिए, उस उपधारा द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग इस प्रकार किया जाएगा कि उस राशि में उस नुकसानी पर या उसके ऐसे भाग पर, जो न्यायालय उपयुक्त समझे, सूचना में वर्णित तारीख से कार्यवाही संस्थित किए जाने की तारीख तक की सम्पूर्ण अवधि या उसके भाग के लिए ब्याज सम्मिलित हों।

(3) इस धारा की कोई बात निम्नलिखित के बारे में लागू नहीं होगी, अर्थात्——

(नया) (क) कोई ऋण या नुकसानी जिस पर, किसी अभिव्यक्त करार के आधार पर, ब्याज साधिकार संदेय है, या

(नया) (ख) कोई ऋण या नुकसानी जिस पर, किसी अभिव्यक्त करार के आधार पर, ब्याज का संदाय वर्जित है।

(नया) (4) इस धारा की कोई बात निम्नलिखित पर प्रभाव नहीं डालेगी, अर्थात्:——

(क) विनिमय-पत्र, वचनपत्र या चेक के अनादरण के कारण वसूल किया जा सकने वाला प्रतिकर[1];

(नया) (ख) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की प्रथम अनुसूची में आदेश 2 के नियम 2 के उपबंध।"।

(नया) (5) इस धारा की कोई बात न्यायालय को, ब्याज पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त नहीं करेगी।

स्पष्टीकरण——इस धारा में,——

(नया) (क) "न्यायालय" के अन्तर्गत अधिकरण या मध्यस्थ भी है;

(नया) (ख) "ऋण" से अभिप्रेत है धन की अभिनिश्चित राशि के लिए कोई दायित्व और उसके अंतर्गत वस्तुरूप में संदेय ऋण भी है किन्तु उसके अंतर्गत निर्णीतऋण नहीं है;

(नया) (ग) "वैयक्तिक क्षति" के अंतर्गत कोई रोग या किसी व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक स्थिति का कोई ह्रास भी है।

3. (1) **धारा 2 की किसी बात के होते हुये भी,** ब्याज ऐसे सभी मामलों में संदेय होगा जिनमें वह————किसी अधिनियमिति या विधि के किसी अन्य नियम अथवा विधि का बल रखने वाली प्रथा द्वारा संदेय है। वर्तमान धारा 1 परन्तुक।

(नया) (2) ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके होते हुए भी, और उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय निम्नलिखित मामलों में नीचे प्रत्येक मामले में विनिर्दिष्ट तारीख से कार्यवाही संस्थित किए जाने की तारीख तक, जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो गया हो कि इस बात के विशेष कारण हैं कि ब्याज क्यों नहीं अनुज्ञात किया जाना चाहिए, ब्याज अनुज्ञात करेगा——

1. यदि चाहें तो विभिन्न व्यावृत्तियों को एक साथ रख सकते हैं।

(क) जहां विधि या संविदा द्वारा अधिरोपित किसी बाध्यता के पालन के लिए प्रतिभूति के बारे में धन या कोई अन्य संपत्ति निक्षिप्त की गई है वहां निक्षेप की तारीख से ;

(ख) जहां धन का संदाय करने या किसी संपत्ति का प्रत्यावर्तन करने की बाध्यता किसी वैश्वासिक नातेदारी के आधार पर उत्पन्न होती है वहां वाद हेतुक की तारीख से ;

(ग) जहां धन या अन्य संपत्ति कपट द्वारा प्राप्त की गई या प्रतिधारित है वहां वाद हेतुक की तारीख से ;

(घ) जहां दावा मेहर या भरण-पोषण के लिए है वहां वाद हेतुक की तारीख से ।

(नया) 4. इस अधिनियम की कोई बात सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 के उपबंधों पर प्रभाव नहीं डालेगी ।" ।

इस रिपोर्ट को तैयार करने में हमें आयोग के सदस्य-सचिव श्री बख्शी से जो मूल्यवान् सहायता प्राप्त हुई है उसकी हम बहुत सराहना करते हैं ।

पी० बी० गजेन्द्रगड़कर	अध्यक्ष
पी० के० त्रिपाठी	सदस्य
एस० एस० धवन	सदस्य
एस० पी० सेनवर्मा	सदस्य
बी० सी० मित्रा	सदस्य
पी० एम० बख्शी	सदस्य-सचिव

नई दिल्ली,
21 फरवरी, 1974

परिशिष्ट 1

ब्याज अधिनियम और कपट

इस परिशिष्ट में कपट से संबंधित चुने हुए मामलों की चर्चा की गई है। ट्रोजन एण्ड कंपनी **बनाम** नागप्पा[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि कपट द्वारा प्राप्त या प्रतिधारित धन की दशा में साम्या न्यायालय (कोर्ट ग्राफ ईक्विटी) ब्याज अनुज्ञात करेगा। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस कारण कि कुछ कंपनियों में शेयरों के क्रय के संबंध में तथ्यों को कपटपूर्ण छुपा कर संव्यवहार किया गया था इसलिए वादी ने प्रतिवादी को या उसके अभिकर्ता को नकद 89,000 रुपए दिए थे। यदि संव्यवहार कपटपूर्वक न किया गया होता तो वादी इतनी रकम न देता। प्रतिवादी के पास वादी के जमा खाते जो धन था वह भी वादी ने खो दिया। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अभिकर्ताओं के पास वादी का बहुत सा धन था और यदि उन्होंने उससे जो कपट किया था वह न किया गया होता तो वह धन अभिकर्ता अर्जित नहीं कर सकते थे। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अभिकर्ता को कपट के सभी मामलों में और सभी रिश्वतों और गुप्त लाभों पर, जो अभिकर्ता ने अपने अभिकरण के दौरान प्राप्त किए हों, ब्याज का संदाय अवश्य करना चाहिए। पटना उच्च न्यायालय ने इस मामले का अनुसरण किया था[2]। पटना वाले मामले में प्रतिवादी को धन एक विशेष प्रयोजन के लिए उस समय सौंपा गया था जब वह वादी के एक कर्मचारी के रूप में कार्य कर रहा था। यह पाया गया कि प्रतिवादी ने वह धन जो उसे सौंपा गया था, दोषपूर्ण और अवैध रूप से अपने पास रोके रखा। ट्रोजन वाले मामले में निर्धारित सिद्धांत को लागू करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी को वह धन जो इस प्रकार सौंपा गया था और उस पर ब्याज पाने का हक है क्योंकि यह मामला न्यायालय की साम्यापूर्ण अधिकारिता के अंतर्गत आता है।

व्याख्या—यहां कहा गया है कि पटना वाले मामले में प्रतिवादी को धन आरंभ में किसी कपट के कारण प्राप्त नहीं हुआ था, यद्यपि उसका उस धन को अपने पास रखे रहना दोषपूर्ण और अवैध था। अतः यह कहा जा सकता है कि इस सीमा तक, धन को दोषपूर्ण रूप से अपने पास रखे रहने के कारण उस पर ब्याज संदेय हो जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि पटना वाले मामले में ट्रोजन वाले मामले के इस सिद्धान्त का कि उस मामले में ब्याज संदेय है जिसमें धन कपट द्वारा प्राप्त किया जाता है, विस्तार उन मामलों पर किया **गया** है जिनमें धन को दोषपूर्ण या अवैध रूप से रोके रखा जाता है।

मद्रास के एक पुराने मामले[3] में मद्रास उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि ऐसा धन जो कपट द्वारा प्राप्त किया गया है, विधि के अधीन ब्याज सहित वसूल किया जा सकता है। इस मामले में **क** और **ख** दो भाई थे जिन्होंने एक बंधक पर संयुक्त रूप से 1000 रुपए की रकम उधार दी थी। अक्तूबर, 1901 में **क** ने बंधककर्ता से उस ऋण की पूर्ण तुष्टि में 1000 रुपए **ख** के प्रतिनिधि **ग** की जानकारी के बिना वसूल कर लिए 1906 में जब **ग** और **क** में बंटवारा हुआ तब **क** ने कपटपूर्वक **ग** से यह कहा कि बंधक अभी भी परादेय है। दिसम्बर, 1908 में ग को उस कपट का पता चल गया और 1909 में उसने उस रकम की, जो बंधककर्ता द्वारा उस समय देय थी जब **क** ने बंधक-

---

1. ट्रोजन एण्ड कम्पनी **बनाम** नागप्पा, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 645।
2. जगन्नाथ सिंह **बनाम** नारायण सरोजी, ए० आई० आर० 1955, पटना 300.।
3. अवांचिया लक्ष्मी नरसम्मा **बनाम** लक्षम्मा (1913) 21 इ० के० से० 394 (मद्रास उच्च न्यायालय)।

कर्ता से ऋण वसूल किया था, आधी रकम क से वसूल करने के लिए वाद चलाया। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ग 500 रु० के लिए डिक्री का हकदार है क्योंकि यह वह रकम थी जो क ने 1906 में आरंभ से दिसम्बर, 1908 तक तथा वाद की तारीख[1] से वसूली की तारीख तक ब्याज सहित वस्तुतः प्राप्त की थी।

व्याख्या--यह स्पष्ट नहीं है कि दिसम्बर, 1908 से, जब वादी को कपट का पता चला, वाद की तारीख तक की अवधि के लिए ब्याज क्यों नहीं अनुज्ञात किया गया ?

1. ऐसा प्रतीत होता है कि वाद की तारीख वर्ष 1909 में किसी समय थी।

परिशिष्ट 2

कतिपय श्रम विधियों में ब्याज संबंधी उपबन्ध

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923

धारा 4क(3) में यह उपबंध है कि यदि उस धारा की अन्य शर्तें पूरी हो जाती हैं तो नियोजक द्वारा एक मास के भीतर जमा न किए गए प्रतिकर पर 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से सरल ब्याज संदेय होगा।

मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936

धारा 7(च), (चच) और (चचच)—इनमें नियोजित व्यक्ति की मजदूरी में से निम्नलिखित की कटौती की चर्चा है, अर्थात्:—

(च) अधिदायों की, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों (जिनके अंतर्गत यात्रा भत्ते और प्रवहण भत्ते के लिए अधिदाय आते हैं, और **उनकी बाबत शोध्य ब्याज:**

(चच) राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित नियमों के अनुसार श्रम कल्याण के लिये गठित किसी निधि में से दिए गए उधार और उनकी बाबत शोध्य **ब्याज:**

(चचच) गृह निर्माण के लिए या अन्य प्रयोजनों के लिए, जो राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित हो, अनुदत्त उधार और उनकी बाबत शोध्य ब्याज।

कोयला खान भविष्य निधि तथा बोनस स्कीम अधिनियम, 1948

धारा 10च—जहां कोई नियोजक इस अधिनियम के अधीन किसी अभिदाय या बोनस या नुकसानी के संदाय में व्यतिक्रम करता है, वहां केन्द्रीय सरकार बकाया की रकम के पच्चीस प्रतिशत से अनधिक नुकसानी, ऐसे नियोजक से वसूल कर सकेगी।

कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952

धारा 14 ख. जहां नियोजक निधि में किसी अभिदाय के संदाय में या किन्हीं प्रकारों के संदाय में व्यतिक्रम करता है, वहां समुचित सरकार बकाया की रकम के पच्चीस प्रतिशत से अनधिक इतनी नुकसानी जितनी वह ठीक समझे, नियोजक से वसूल कर सकेगी।

वैयक्तिक क्षति (प्रतिकर बीमा) अधिनियम, 1963

धारा 7—उन रकमों के विषय में है जिनका इस अधिनियम के अधीन तिकर के रूप में संदाय किया जाना है। इसके अंतर्गत उस रकम पर ब्याज नहीं है।

बोनस संदाय अधिनियम, 1965

धारा 21—जहां किसी समझौता या अधिनिर्णय या करार के अधीन कोई धन कर्मचारी को अपने नियोजक द्वारा बोनस के रूप में देय है, वहां स्वयं कर्मचारी उस धन की जो उसे देय है, वसूली के लिए आवेदन समुचित सरकार से कर सकेगा और यदि समुचित सरकार का समाधान हो जाता है कि ऐसा कोई धन देय है तो वह उस रकम के लिए एक प्रमाणपत्र कलक्टर को जारी करेगा जो उसे भूराजस्व की बकाया के रूप में वसूल कर सकता है।

इस धारा में ब्याज' का कोई जिक्र नहीं है।

उपदान संदाय अधिनियम, 1972

धारा 8—उपदान की वसूली—यदि इस अधिनियम के अधीन संदेय उपदान की रकम नियोजक द्वारा विहित समय के भीतर उसके हकदार व्यक्ति को संदत्त नहीं की जाती है तो नियंत्रक प्राधिकारी, व्यथित व्यक्ति द्वारा उसे इस निमित्त आवेदन किए जाने पर, कलक्टर को उस रकम के लिए एक प्रमाणपत्र जारी करेगा जो विहित समय के अवसान की तारीख से उस पर नौ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से चक्रवृद्धि ब्याज सहित उसकी वसूली भूराजस्व के बकाया के रूप में करेगा तथा उसे उसके हकदार व्यक्ति को संदत्त करेगा।

808 ग्रो० एल० डब्ल्यू०/77-Sec v-400-GIPF.